॥ श्रीहरिः ॥

1493▲

नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥ 1493

नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

आज जिधर दृष्टि डालते हैं उधर ही कलह, अशान्ति, संघर्षका बोलबाला दीख रहा है। भौतिक सुखकी इच्छा ही इनके होनेमें प्रधान हेतु है। भौतिकताका ही प्रचार हो रहा है। मनुष्यजन्म हमें किसलिये मिला है? हम यहाँ क्या कर रहे हैं? हमें यहाँ इस संसारमें सुख, शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है तथा हम जन्म-मरणके चक्रसे छूटकर परमानन्दकी प्राप्ति कैसे कर सकते हैं? इन बातोंकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

गीताप्रेसके संस्थापक परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके मनमें यह भाव बड़ा प्रबल था कि हमलोगोंको गृहस्थाश्रममें सुख, शान्ति कैसे रहे तथा हमें भगवत्प्राप्ति हो सके। या तो इसी जन्ममें हम भगवत्प्राप्ति कर लें नहीं तो कम-से-कम भविष्यमें हमें जन्म न लेना पड़े। इस उद्देश्यको लेकर उनके सभी सत्संग, प्रवचन होते थे। ऐसी सरल भाषामें वे प्रवचन होते थे कि सभी भाई, बहिन, बालक भी उनको समझ लें। ऐसी कीमती बातें दैनिक व्यवहारमें लानेसे घरमें कलह और अशान्ति न रहे।

ये प्रवचन लगभग सन् १९४३ ई० के पहले प्राय: गीताभवनमें दिये गये थे, जिन्हें किसी सज्जनने लिख लिया था। उन प्रवचनोंसे हम, आप लाभ ले लें इस उद्देश्यसे इन प्रवचनोंको पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। यदि हम एक प्रवचनकी बातोंको भी जीवनमें ला सकें तो हमारा कल्याण निश्चित है। अत: पाठक, पाठिकाओंसे विनम्र निवेदन है कि इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें, औरोंको पढ़नेकी प्रेरणा दें तथा अपने जीवनमें इन बातोंको लाकर हम सुख, शान्तिसे रहते हुए परमानन्दकी प्राप्ति कर लें।

—**प्रकाशक**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

❑ ❑

॥ श्रीहरिः ॥

नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें

राजा साहबने कहा—मेरी स्थिति कभी तो ठीक रहती है, कभी नहीं भी रहती, पर सत्संग करना मेरे हाथमें नहीं, मुझे गोरखपुर अधिक पसन्द आया है, ऋषिकेशको आपने इसलिये पसन्द किया होगा कि वह एकान्त और पवित्र भूमि है। आपका कहना वस्तुतः बहुत हितकर है, मैं तो बेगार काट रहा हूँ, भजन तो होता नहीं, असली भजन तो वही है जिससे मन उसमें लगा रहे।

उत्तर—तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जबतक भगवान् अणु-अणुमें न दीखने लगें, तभीतक उनके जप और स्मरणके लिये चेष्टा करनेकी आवश्यकता है, फिर तो भगवान् एकदम प्रत्यक्ष ही हो जाते हैं। अग्निके उदाहरणसे भी बढ़कर भगवान् प्रकट हैं। वहाँ तो अग्निके प्रकट होनेका निश्चय है और यहाँ तो भगवान् साक्षात्-रूपसे प्रकट हैं ही।

प्रश्न—आपका यह कथन कि भगवान् सभी जगह हैं तभी माननेमें आ सकता है जब आपमें पूर्ण श्रद्धा हो जायगी। घूम-फिरकर प्रश्न श्रद्धापर ही आकर अटक जाता है।

उत्तर—एक बालकको किसीने कह दिया कि दियासलाईमें अग्नि है, उससे अग्नि प्रकट हो सकती है। पर वह आवश्यकताका अनुभव करनेपर भी यदि प्रयत्न न करे तो उसके विश्वासमें कमी ही समझनी चाहिये, यदि दियासलाईसे अग्नि प्रकट करके

प्रवचन—दिनांक २८-१२-१९३६, दोपहर, गोरखपुर।

बालकको समझा दिया जाय तो उसे भी अग्निका विश्वास हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कह रहे हैं कि हे अर्जुन! '**तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः**' (गीता २। ६१) उन सब इन्द्रियोंको रोककर मेरे परायण हो। इसमें परम भक्ति भावकी झलक है। '**रथं स्थापय मेऽच्युत**' (गीता १। २१) में भी अच्युत शब्द जना रहा है कि अर्जुन भगवान्‌को अच्युत मानकर ही उन्हें सम्बोधन कर रहे हैं।

'**मयि सर्वाणि कर्माणि**' (गीता ३। ३०) में कहते हैं कि सब कर्मोंको मेरे अर्पण कर दे, किन्तु मैं परमेश्वर हूँ यह बात नहीं कही। चौथे अध्यायमें और खुले—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

(गीता ४।५)

श्रीभगवान् बोले—हे परन्तप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उस सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ।

'**भूतानामीश्वरोऽपि सन्**' (गीता ४।६) में धर्मके लिये प्रकट होनेका रहस्य बतलाया। फिर पाँचवें अध्यायमें और कहा, अन्तमें कहा कि मैं सबका सुहृद् हूँ। छठे अध्यायमें अपने भजन करनेवालोंकी श्रेष्ठता बतलायी है। सातवेंमें बतलाया कि मुझ समग्रको किस प्रकार जाना जा सकता है। पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस आदि कहकर अपनी सगुणता बतलायी। आगे चलकर अपनी समग्रता बतलायी, फिर निराकारकी व्याख्या बतलायी। '**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**' (गीता ९।४) तथा '**पश्य मे योगमैश्वरम्**' (गीता ११।८) आदिमें अधिक खुले। दसवेंमें अपनी विभूतियाँ

बतलायी और अन्तमें कहा कि सारा संसार मेरे एक अंशमें है। ग्यारहवेंमें विश्वरूपमें समस्त ब्रह्माण्डको दिखला दिया। फिर चतुर्भुजरूप दिखलाकर मनुष्यरूपमें होकर वैसी ही बातें करने लगे। बारहवें अध्यायमें निराकारकी अपेक्षा साकारको सुगम बतलाते हुए उसकी उपासना करनेके लिये कहा।

राजा साहब—आज तो ऐसे ही प्रश्न होने लग गये। वैसे आपके द्वारा कथन की हुई सभी बातोंमें लाभ है। पर अधिक-से-अधिक लाभ तो भगवान्‌के गुण, प्रभाव, रहस्य आदिके वर्णनमें है। मुझे तो आपका सत्संग अधिक कहाँ मिलता है। मैं तो आपकी तत्त्वचिन्तामणि, परमार्थ-पत्रावली और पोद्दारजीकी पुस्तकें तुलसीदल, नैवेद्य आदिको देखा करता हूँ, दुबारा फिर इन्हीं पुस्तकोंके पन्ने उलटने शुरू कर देता हूँ, क्योंकि हर समय सब बातें याद नहीं रहतीं। द्रष्टापनका ध्यान निरन्तर बना रहे इसलिये उसको भी मैं बार-बार देखता हूँ।

उत्तर—निष्कामभाव सोना है, दूसरे कर्म कूड़ा, कचराके स्थानपर हैं। निष्काम कर्म अग्नि है, वह सबको जला देती है। सोनेको नहीं जलाती, कूड़ा, कचरा आदि वस्तुएँ जल जायँगी। निष्काम कर्मकी आगको खूब तेज करना चाहिये। उसे प्रज्वलित करनेके लिये धौंकनी सत्संगरूपी वायु है। असली प्रेम वही है जो भगवद्विषयक है, वह होता है श्रद्धासे।

यदि केवल भगवान्‌की आकृतिसे उद्धार होता तो जिस समय भगवान्‌का यहाँ अवतार हुआ था उस समय सबका उद्धार हो जाता, पर ऐसी बात नहीं मालूम होती। केवल भक्तोंको ही उनमें विशेषता दीखती थी। दूसरोंको तो वे साधारण मनुष्य ही दिखायी पड़ते थे।

भगवान् दो रूपमें दीखते हैं, एक तो जिस रूपमें दीख रहे हैं, वैसे दीखेंगे और प्रार्थना करनेपर राम, कृष्ण आदि जिस रूपमें प्रार्थना की जायगी, उस रूपमें दीखा करेंगे। जैसे गोपियोंको सब जगह सदैव श्रीकृष्णरूपसे दीखते थे। जैसे काँचके महलमें हर जगह देखनेपर अपनी ही परछाईं दीखेगी। इसके अतिरिक्त एक बात यह है कि जिसके नेत्रोंमें भगवान् बस जाते हैं, उसे सदा सर्वदा भगवान्-ही-भगवान् दीखते हैं। जैसे किसीकी आँखमें कोई दोष हो, उससे जाला दीखता है तो वह जहाँ देखता है, वहाँपर जाला ही दीखता है। इसी तरह जिसके नेत्रोंमें भगवान् बस जाते हैं, उसे जहाँ नेत्र जाते हैं, वहीं भगवान् दृष्टिगोचर होते हैं और मनसे भी इसी तरह दीखते हैं।

प्रह्लादजीको धातुके रूपमें भगवान् सब जगह दीखते थे, उन्होंने दर्शनकी भी इच्छा नहीं की, फिर भी भगवान्‌ने कई बार कई रूपोंमें दर्शन दिये।

प्रेम, गुण, नाम, रूप, धाम, तत्त्व, रहस्य इन सबकी चर्चा यदि भगवान्‌का तत्त्व जाननेवाले भक्तोंद्वारा हो तो वे प्रकट हो जाते हैं।

प्रश्न—पापके नाश होनेका जो क्रम है वह उत्तरोत्तर किस तरह बढ़ता है? जैसे मैंने सत्संग किया उससे मेरा कुछ पाप नाश हुआ, फिर सत्संग किया उससे थोड़ा नाश हुआ। उसका क्रम इसी प्रकार एक-सरीखा रहे, तब तो बहुत देर लग सकती है।

उत्तर—दोनों ही तरहसे होता है, आगे जाकर बहुत तेज हो जाता है। यह उदाहरण बिलकुल ठीक है। यह बिलकुल नयी बात है, क्योंकि ऐसा प्रश्न पहले किसीने किया ही नहीं था, यह बात कहीं भी देखनेपर मेरे लिखे ग्रन्थोंमें भी नहीं मिलेगी।

एक गाँवमें दस हजार फूसके मकान हैं। एक झोपड़ेमें आग लगा दो, वहाँसे चिनगारी उड़ी तो पासके तीन झोपड़ोंपर पड़ी। तीनों जलने लगे। अग्निका और अधिक विस्तार हुआ। इससे और भी ज्यादा फैली तो भयंकररूपमें प्रज्वलित हो उठी। उसका क्रम बिलकुल ही बदल गया। ऐसे अवसरपर हवा जोरकी चाहिये। हवा जोरकी नहीं होगी तो तीन घर जलकर ही बुझ गये। फिर आग लगेगी तब देखा जायगा। चारों तरफसे खूब आग लग जाय तो फिर कितने भी आदमी हों उसे बुझा नहीं सकते। ज्ञानाग्निकी शास्त्रोंमें कई जगह बात आयी है—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

(गीता ४। १९)

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(गीता ४। ३७)

जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनको भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको भस्ममय कर देता है।

कोई पूछे कि जिस प्रकार ज्ञानीके संगसे अज्ञानी ज्ञानी हो जाता है, इसी प्रकार क्या अज्ञानीके परमाणु भी ज्ञानीपर कुछ असर करते हैं या नहीं? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार अग्निमें घास मिले या घासमें अग्नि मिले, दोनों तरहसे अग्नि ही बनेगा, घास नहीं। उसी तरह दोनोंके संगसे ज्ञान ही बढ़ेगा।

जहाँ अग्निका वास होता है, वहाँ सब परमाणु गर्म हो जाते हैं। अग्नि प्रत्यक्ष भले ही न दीखे, पर अनुमानद्वारा निश्चय किया जा सकता है कि वहाँ अग्नि है। जहाँ ज्ञानरूपी अग्नि प्रत्यक्षरूपसे धधक रही हो, वहाँ जानेसे पाप प्रत्यक्ष नष्ट होते प्रतीत होते हैं।

जहाँ कसाईखाना है, वहाँ जाकर देखें तो हिंसावृत्ति जागृत होगी, क्योंकि वहाँ हिंसाके परमाणु रहते हैं। इसी प्रकार महापुरुषके संगसे उनके परमाणुद्वारा हमारे परमाणु (क्रियात्मक पाप) जलकर नष्ट हो जाते हैं। उन्हें हम नेत्रोंसे देखते हैं तो जो कुछ भी उनकी बात नेत्रोंसे घुसती है वह नेत्रोंको पवित्र करती हुई हृदयके बुरे चित्रोंका नाश करती है। कानोंसे उनकी वाणी प्रवेश करती है तो कानोंको पवित्र करके भीतरी निंदा-स्तुति आदि दोषोंको जला देती है और उनका स्पर्श करनेपर स्पर्शके पाप दूर होते हैं। अब गंध और स्वादकी बात रही। उन्होंने भोजन कराया या उनका भोजन प्रसाद खा लें तो हमारा दुःख नष्ट हो सकता है। प्रसादके कई अर्थ हैं—प्रसन्नता, रोगोंका नाश, अन्तःकरणकी स्वच्छता आदि। इसका ऐसा नाम क्यों पड़ा? अन्तःकरणकी स्वच्छता प्रसादसे कैसे होती है? उत्तर यह है कि ठाकुरजीके प्रसादमें हमारी श्रद्धा है, प्रेम है, अतः उससे अन्तःकरणके दोषोंका नाश होता है। भगवत्कृपाको भी प्रसाद बतलाया गया है; क्योंकि भगवत्कृपासे भी सारे पापोंका नाश होकर मनुष्य तर जाता है—**'मत्प्रसादात्तरिष्यसि'** (गीता १८। ५८)।

महापुरुषोंकी कृपासे भी तर जाते हैं, इसलिये उनकी कृपाको भी प्रसाद कहा जाता है। दुनियाके भीतर प्रसाद सबके प्रति जुड़ जाता है, महापुरुषोंका दर्शन, स्पर्श, वाणी, भोजन आदि सभी प्रसाद हैं।

महात्माके समीप बैठे हैं वहाँ मिथ्यावादी भी मिथ्या नहीं बोल पाता। वह कह देगा कि आपके सम्मुख असत्य कभी नहीं बोलूँगा। धर्मात्मा राजा होनेपर प्रजामें भी कोई पापी नहीं रह सकता। यह बात शास्त्रोंमें आती है। राजा अश्वपतिके यहाँ बड़े-बड़े त्यागी बैठे हैं। राजाने कहा आप धन नहीं लेते, मेरा धन अपवित्र नहीं है, मेरे राज्यमें वेश्या नहीं है, क्योंकि उनका गुजारा नहीं होता। कोई मदिरालय नहीं है, क्योंकि कोई शराब नहीं पीता है। कसाई नहीं है, क्योंकि कोई मांस नहीं खाता है। कोई चोर नहीं है, क्योंकि किसीको आवश्यकता ही नहीं पड़ती। उन्होंने कहा हम यहाँ इस धनके लिये नहीं आये हैं। हम मोक्षरूपी धन लेने आये हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि हमलोग भी राजा अश्वपति-जैसे बन सकते हैं।

❑ ❑

सच्चिदानन्दकी एकता

आजका विषय सत्-चित्-आनन्दकी एकताका है। सच्चिदानन्दकी एकता किस तरह करनी चाहिये? बुद्धिमिश्रित परमात्माके स्वरूपका या ज्योतिस्वरूपका या विश्वरूपका ध्यान करना चाहिये। सबका एक ही फल बतलाया गया है। जिस देशमें जो पदार्थ नहीं होता, उस देशमें उसे समझाना बड़ा कठिन है। साधकके लिये ज्ञान-घनका साधन ही सबसे सुगम है। सत्-चित्-आनन्दकी एकताका जिस व्यक्तिको अनुभव हो वही ठीक तरहसे समझा सकता है। वास्तवमें वही सत् है, वही चित् है और आनन्द है। शास्त्रोंमें सत्-चित्-आनन्द परमात्माका स्वरूप ही बतलाया है। सत् जो परमात्माका स्वरूप है, वही परमात्मा है। परमात्मा सत्य है। जब यह बात स्वीकार कर ली जाती है कि परमात्मा हैं, तभी उनकी प्राप्ति हो जाती है। हमलोगोंमें जिसने परमात्माको स्वीकार कर लिया है उसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है। जिस प्रकार हमने मकानको स्वीकार कर रखा है, परमात्मा उससे भी कई गुने अधिक प्रत्यक्ष स्वीकार करने-योग्य हैं। मकान तो अनित्य है और वह परमात्मा नित्य हैं। जैसे हम दूसरी वस्तुओंको स्वीकारकर मिलते हैं, वैसा स्वीकार करना एवं मिलना परमात्माका नहीं है, वहाँ भूत, भविष्य एवं वर्तमान भी नहीं है। ये भी अपनी बुद्धिके अन्तर्गत ही है। उसका होनापन अद्भुत है, विलक्षण है। हम जितने पदार्थोंको प्रत्यक्ष देख रहे हैं, वह परमात्मा तो उनसे बहुत अधिक विलक्षणरूपसे प्रत्यक्ष हैं। वह परमात्मारूपी देश अत्यन्त विलक्षण है। इसलिये वह बताया भी नहीं जा सकता है। वह तो संकेतके द्वारा ही

प्रवचन—दिनांक १२-६-१९३६, शुक्रवार, प्रातः, स्वर्गाश्रम।

बतलाया जा सकता है। वह परमात्मा कैसे हैं, यह चिन्तनमें भी नहीं आता। हम जो पदार्थ देख रहे हैं, वे नाश होते दीखते हैं, वे नाशवान् हैं, अनित्य हैं, असत्य हैं। परमात्माकी सत्यता और चेतनता दूसरी ही है। आज दो बातोंपर विचार करना है—

१. सच्चिदानन्दकी एकता किस प्रकार हो सकती है?

२. उनका ध्यान किस प्रकार हो सकता है?

परमात्माका होनापन प्रत्यक्ष है। जैसे जो पदार्थ हम अपनी दृष्टिसे प्रत्यक्ष देख रहे हैं, उससे कई गुना अधिक आत्माका प्रत्यक्ष होना है। ये पदार्थ तो अनित्य हैं और आत्मा नित्य है। शरीर छूटनेके बाद भी आत्माका अभाव नहीं होता।

जैसी आत्माकी सत्ता है, वैसी सत्ता और किसीकी नहीं है। आत्मा चेतन है। आत्मासे सत्-चित् अलग नहीं है। बुद्धिके द्वारा जो सत्य-असत्य समझते हैं, उससे भी आत्मा विलक्षण है। आत्माके होनेमें कोई प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। जहाँ आत्मा है, वहाँ दूसरी वस्तु हो सकती है। जहाँ आत्मा है ही नहीं, वहाँ दूसरी वस्तु कैसे हो सकती है। समाधिका भी अभाव होता है। पर जिसकी अवस्था कही जाती है, उसका अभाव नहीं होता, वह आत्मा है। वह सुखका अनुभव करता रहता है। वह सत्य और चेतन है, साथ ही सुखका अनुभव कर रहा है। वह सुख चेतन सुख है, चेतन आनन्द है। वह आनन्द बुद्धिसे परे है, सबका साक्षी वही चेतन आत्मा है, वह आनन्दमय है। इसलिये उसे सच्चिदानन्दघन कहा है। सत्-चित्-आनन्द कोई अलग-अलग वस्तु नहीं है। आत्माके होनेपनमें आत्मा चेतन है, ऐसा समझमें आया, वहाँ अचेतन हो ही नहीं सकता, वह सत्य है। सत्यता और चेतनता एक ही है। जो माननेवाला है वह आनन्दमय है। परमात्माके स्वरूपका आनन्द विलक्षण आनन्द

है। जैसे घड़ा भरनेपर उसमें और पानी नहीं समा सकता, वैसी ही हालत उस आनन्दमें है। वाणीकी शक्ति नहीं कि उसका वर्णन कर सके, बुद्धिकी शक्ति नहीं कि वह उसे जान सके। व्यक्ति इन्द्रियोंका सुख छोड़कर, तामसी और राजसी आनन्द छोड़कर, सात्त्विक वृत्ति ग्रहणकर सात्त्विक बुद्धिसे सात्त्विक आनन्दका ध्यानमें अनुभव करता है। जैसे आँख खुलनेपर स्वप्नकी सीमा आ जाती है। परन्तु परमात्मरूपी आनन्दकी सीमा नहीं है, वह तो अपार है। आकाशका भी आकार है, किन्तु उस आनन्दका आकार नहीं है। वह तो आकाशसे कहीं बहुत बड़ा है। उसे कैसे पकड़े। सात्त्विक आनन्दसे भी वह विलक्षण है। आत्मबुद्धिसे जो प्रसन्नता होती है वह सात्त्विक आनन्द है। सात्त्विक आनन्द भी बाँधता है। सात्त्विक आनन्दके बीचमें मालूम होता है कि आज बड़ा आनन्द है। इससे समझमें आता है कि आनन्द जिसे भासता है, वह वस्तु अलग और आनन्द अलग है। इसीलिये वह परमात्मरूपी आनन्द दूसरा ही है। वहाँ ज्ञाता और ज्ञेय अलग-अलग नहीं होते। वहाँ तो दोनों एक ही हैं, वहाँ यह कहनेकी गुंजाइश नहीं है कि आज बड़ा आनन्द है, बड़ी शान्ति है। यह कहना सात्त्विक आनन्दमें ही हो सकता है। वह आनन्द किसीका ज्ञेय नहीं, ध्येय नहीं। वह आनन्द स्वयं ज्ञाता है, स्वयं ही द्रष्टा है। वह आनन्द ही ज्ञान है। उस आनन्दका स्वरूप ज्ञान है। यानि वह ज्ञानस्वरूप आनन्द है। उस आनन्दको ही ज्ञान है कि ज्ञानस्वरूप आनन्द है, हमको नहीं, क्योंकि आनन्द स्वयं ज्ञाता है, चेतन है। आनन्दको जाननेवाला वहाँ नहीं रहता। वहाँ ज्ञान और आनन्द एक ही है, बतलानेमें जाति दो है। उस आनन्दमें कोई विकार नहीं है, वह नित्य है, अचिन्त्य है। उससे भिन्न कोई सत्ताकी स्थापना नहीं हो सकती। वहाँ तो मैं हूँ आदि शब्दोंके

उच्चारण करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। वहाँ आनन्द ही स्वरूप है। जहाँ आनन्दका होना कायम हो गया वहाँ आनन्दसे अलग कोई वस्तु नहीं है। इस लौकिक आनन्दमें असत्यता है, अचेतनता है, परन्तु वह परमात्मरूपी आनन्द तो स्वयं सत्य है, स्वयं चेतन है। इस तरह सच्चिदानन्द एक ही है।

चेतनका ध्यान किस तरह किया जाय?

चिन्मय चेतनको पकड़ लेना ही उसका ध्यान करना है। ध्यान करनेवाला अलग और चेतन अलग है—ऐसी बात नहीं है, वह एक ही है। सबको त्यागनेपर त्यागी तो है, किन्तु वहाँ चिन्मय चेतन ही त्यागी है और त्यागी ही चिन्मय चेतन है, दोनों एक हैं।

जहाँ ज्ञान है वहाँ निद्रा कहाँ? चेतनताका बाहुल्य होगा, विलक्षण बाहुल्य होगा। आगे पूर्ण आनन्द प्राप्त होगा। वहाँ यह कहनेवाला भी नहीं रहेगा कि तृप्ति हो गयी या नहीं हुई, वहाँ आनन्द-ही-आनन्द है और बढ़ता ही जाता है। जिसको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है वह फिर लौटकर नहीं आता। जितनी बातें बतलायी गयी हैं, इससे भी कहीं अधिक परमात्माके विषयकी सत्यता, चेतनता और आनन्दकी बातें हैं।

❑ ❑

संसार परमात्मस्वरूप ही है

संसारमें विषयासक्त एवं पापी पुरुष परमार्थी पुरुषसे बिलकुल विपरीत हैं। मान-बड़ाईको चाहनेवाला मार्ग पतनका मार्ग है। हरेक काममें स्वार्थ देखना अपने परमात्मारूपी ध्येयसे विपरीत नीचे गिरानेवाला मार्ग है। परमार्थका मार्ग उत्तम है। अपने शरीर और रुपयोंकी हानि भी होकर दूसरोंका लाभ होता है, वही असली लाभ है। हम हरेक आदमीके साथ स्वार्थका व्यवहार करते हैं, ऐसा न होकर स्वार्थ-त्यागका व्यवहार करना चाहिये। यह असली सेवाकी बात हुई।

जिस समय भगवच्च्चर्चा चलती है, मुर्दा जलाया जाता है, वैराग्यकी बातें होती हैं, ऐसे समयमें जैसी वृत्तियाँ रहती हैं, ऐसी वृत्तियाँ सदा ही बनी रहें तो उद्धार होनेमें कोई सन्देह नहीं। यह शरीर शान्त हो जायगा तो इसकी राख भी किसीके काममें नहीं आयेगी। जो व्यक्ति ऐसा सोचकर इसके रहते हुए ही इसे दूसरेके काममें लाये वही बुद्धिमान् है। हमें इस बातका पता नहीं कि कब मृत्यु होगी। शरीर शान्त हो जायगा, किसीसे सम्बन्ध नहीं रहेगा, फिर क्या काम आयेगा, इसलिये शीघ्र ही अपना काम बना लेना चाहिये। केवल शरीरका पालन और पोषण तो धनका नुकसान ही है। ऐसा न कर हमको अपनी आत्माका उद्धार कर लेना चाहिये। शरीरको भोजन इसलिये देते हैं कि इससे हमें अभी काम लेना है, आरामके लिये नहीं। जितने भी जीव मनुष्य देखता है, सबको आराम पहुँचानेमें ही अपना हित समझना चाहिये। ऐसा जिसका सिद्धान्त है वही मनुष्य है। जो मनुष्य, मनुष्य-शरीर पाकर दूसरोंकी सेवा नहीं करता है, वह चौरासी लाख योनियोंमें कष्ट पाते हुए

प्रवचन—दिनांक १२-६-१९३६, रात्रि, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

भटकता फिरता है। सकामभावसे भी कर्म करना न करनेसे उत्तम है। यदि वह कर्म निष्काम है तो उत्तम-से-उत्तम बात है।

जिसका चींटीसे देवतापर्यन्त सभी प्राणियोंकी सेवा करनेका भाव है, वह परमपदको यानि भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त होता है। उसे वही पदवी प्राप्त हो जाती है जो भगवान् विष्णुको प्राप्त है। जो मनुष्य मनुष्योंको भी सुख नहीं देता, उस नीच पुरुषका आगेका भविष्य कण्टकमय हो जाता है। इस बातको खयाल करके स्वार्थ त्यागकर सबकी सेवा करनी चाहिये।

ऐसे ही स्त्री भी पतिकी सेवाकर परमधामको प्राप्त हो जाती है। जो स्त्री भगवान्‌को ही भजती है उससे भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि वह कहते हैं कि मैं पतिके रूपमें घरमें ही मौजूद हूँ, इसलिये उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन स्त्री-पुरुष दोनोंकी प्रसन्नतासे ही करना चाहिये। माहमें एक समय सहवास करना चाहिये, इससे अधिक करना पशुवत् कार्य ही है। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर यदि एक वर्षतक ब्रह्मचर्यसे रहें तो कितने ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्यके पालनसे वीर्य और तेजकी वृद्धि होती है।

सायंकाल सन्ध्या करते समय तो बैठे-बैठे ही अर्घ्य देनेकी आवश्यकता है, अर्घ्य देते समय मुँह पश्चिमकी ओर ही रहना चाहिये।

हम सब लोगोंको त्यागका व्यवहार सीखना चाहिये। यदि रत्न भी मिलें तो उनकी परवाह नहीं करनी चाहिये। दीखनेके लिये हमें संसारमें साधारण वेश रखना चाहिये और मनमें महापुरुषोंके लक्षणको अक्षरशः पालनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जो ऐसे नियमोंका पालन करते हैं उनका ही जन्म लेना धन्य है। मनुष्य-जीवन पाकर अपना ध्येय सिद्ध न किया तो फिर पशु ही हमसे

अच्छे हैं। जिन पुरुषोंमें शील, विद्या, दान, तप आदि नहीं हैं, वे पशुवत् ही विचर रहे हैं।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

हरेक मनुष्यको अपनी उन्नति एवं परमात्माको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। परमात्माके मिलनेके पश्चात् संसारके लोगोंको भी उस ओर बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। साधक इतनी उच्च कोटिको प्राप्त हो सकता है कि जहाँ वह जाता है वह स्थान पवित्र हो जाता है और तीर्थ बन जाता है। ये सारी बातें श्रद्धा-विश्वासपर निर्भर हैं। जब हम चलते हैं तब सदा सारे पशु-पक्षी आदिमें प्रभुका अनुभव करते रहना चाहिये। सारा संसार परमात्माका स्वरूप ही है। ऐसा देखनेसे सारा संसार चेतनमय दीखने लगेगा, चिन्मय दीखने लगेगा, यह सर्वोच्च भाव है।

तुलसीदासजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

ऐसा भाव होनेका उपाय यह है कि सारे संसारको हर समय भगवद्रूप देखे। ये वृक्ष, पत्ते, सारी दीखनेवाली चीजें भगवान्‌के रूपमें दीखेंगी। यहाँ भगवान् पहाड़रूपमें, यहाँ भगवान् पत्थररूपमें हैं, सभी भगवान्-ही-भगवान् हैं। यहाँ शान्ति और आनन्द-ही-आनन्द दीखेगा। उसके अलावा शेष कुछ रहेगा ही नहीं। जो मुर्दा है उसमें भी जान आ सकती है। जब पशु, पक्षी, पत्थर भी परमेश्वररूप दीखनेपर उनमें चेतनता आ जाती है तो मुरदा क्या चीज है? पत्थर तो पत्थर था, किन्तु मुरदेमें जान थी। उसमें जान आना कठिन बात नहीं है। मूढ़ आदमीका संकल्प जब सिद्ध हो जाता है तो ज्ञानवान्‌का संकल्प पूरा होनेमें कौन बड़ी बात है।

जिस मनुष्यसे मित्रका बर्ताव था, उसीसे एक समय शत्रुका भाव हो जाता है यह भी जाननेकी बात है। ऐसा भाव अज्ञानी मनुष्यका ही होता है, किन्तु ज्ञानवान् तो सबको परमात्मा समझ सकता है। इसलिये सब कुछ परमात्माका स्वरूप है ऐसी भावना करनी चाहिये। पवित्र आत्माकी की हुई भावना सत्य होती है, ये भगवान्‌के वचन हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

जो मुझे सर्वत्र देखता है उससे मैं अलग नहीं होता। जो मनुष्य जिस भावनासे संसारको देखता है उसको उसी प्रकार संसार दीखता है। सारी बातें भावनासे ही जैसी देखना चाहे वैसे देख सकता है। वह महात्मा सबसे दुर्लभ है जो संसारमें सब जगह भगवान्‌को ही देखता है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७।१९)

हमारे लिये यह संसार साक्षात् नारायणका रूप बन जाय इसमें कौन-सी बड़ी बात है। भगवान् सब जगह विराजमान हैं, यह भावना ही नहीं है, अपितु सच्ची बात है।

अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे। जो व्यक्ति इस तरह देखता है वह प्रेममय बन जाता है। वृक्ष, पत्थर, पशु, पक्षी, सबको प्रभु ही प्रभु देखता है। उनसे गले लगकर आनन्दसे मिलना चाहता है, उस व्यक्तिका भाव अद्भुत हो जाता है। सारा संसार उसे नारायणरूपमें दीखने लगता है, इसलिये सब लोगोंको परमात्ममय समझकर व्यवहार करना चाहिये।

❑ ❑

ध्यानकी विशेषता

परिग्रहका त्याग करे। चित्त और शरीरको वशमें रखकर परमात्माका दर्शन करना ही प्रधान ध्येय रखे। गृहस्थमें रहते हुए संन्यासीके समान आचरण करे, निरन्तर भगवान्‌की स्मृति बनी रहे। इन्द्रियोंको संसारसे हटाकर परमात्मामें लगावे, उसके बाद मनके संकल्पका त्याग करे, कामनाका त्याग करे, स्फुरणाका त्याग करे। जिसके अन्तःकरणसे संकल्पका अभाव हो जाता है, ऐसे पुरुषका नाम प्रशान्तात्मा है—

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

(गीता ६।१४)

ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे।

हम सब लीला करने आये हैं, इसलिये ऐसी लीला करनी चाहिये जिससे भगवान् प्रसन्न हों। झूठ, कपट, चोरीका व्यवहार न करे। ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान् हमारे साथ ही रहते हैं, भगवान् लीला करते हैं, उनके साथ लीला करना ही उनको मदद देना है। भगवान्‌के मनमाफिक बन जायँ, यह मार्ग बड़ा सुन्दर और सरल है। भगवान्‌के अनुकूल ही सब कार्य करें तो कार्यकी सिद्धि बहुत शीघ्र हो सकती है। भगवान्‌के प्रति इतना प्रेम होना चाहिये कि उनका नाम सुनते ही प्रेममें मुग्ध हो जाय। मन्दिरमें भगवान्‌की मूर्ति दीखते ही प्रेममें गद्‌गद हो जाय। वंशीकी ध्वनि सुनते ही भगवान् कृष्णकी याद आ जाय। कभी-

---

प्रवचन—दिनांक १३-६-१९३६, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

कभी भगवान्‌से वह करुणाभावसे प्रार्थना करता है कि आप क्यों नहीं आते हैं, कभी भगवान्‌पर रोष भी आ जाता है, भगवान् उससे नाराज नहीं होते। ये सारी बातें मनसे होनी चाहिये। हमारे मनको भगवान्‌में रमाना चाहिये। भगवान् कहते हैं, मनका संयम कर वशमें करके मुझमें लगाओ, अपने चित्तको भगवान्‌के मुखारविन्दपर टिका दे। इसका नाम **मच्चित्ता** है। एक प्रभुके स्वरूपके अतिरिक्त और कोई वस्तु उनके हृदयमें है ही नहीं। यहाँ दसवें अध्यायके नवें श्लोकमें भगवान्‌ने छः विशेषण बतलाये हैं। जो व्यक्ति ऐसा बन जाता है वह आनन्द-ही-आनन्दमें मग्न हो जाता है, फिर उसका ध्यान नहीं छूट सकता।

कैसे छूटे? वहाँ तो ऐसा आस्वादन आता है कि यदि तलवारोंसे उसका शरीर काटा जाय तो भी ध्यान नहीं छूटता। जो अपने शरीरकी परवाह छोड़कर भगवान्‌में मन लगाता है, उसे मरनेकी परवाह नहीं रहती। उदाहरणके लिये भक्त प्रह्लादका ध्यान एक मिनट भी नहीं छूटता था। जिस तरह मछली जलके बिना एक मिनट भी नहीं रह सकती, वैसे ही हमलोगोंकी दशा ध्यानके लिये होनी चाहिये। भगवान्‌का मुखारविन्द कितना सुन्दर और आनन्ददायक है। जैसे भँवरा पुष्पका रस लेता रहता है, उसी प्रकार हमें भी भगवान्‌के मुखारविन्द, मुखकमलको निरखते रहना चाहिये। मुखारविन्दकी सुन्दरता अवर्णनीय है। रूप-लावण्यकी सीमा नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णका मुखारविन्द चन्द्रमाकी तरह गोल है, विष्णुजीका मुख थोड़ा गोल है, विष्णुभगवान्‌का स्वरूप तेजस् वस्तुसे बना हुआ है और वह तेजस् वस्तु भी दिव्य है, देवताओं-जैसी नहीं है। भगवान्‌के नेत्र सदा खुले ही रहते हैं। उन नेत्रोंमें अपार गुण, शान्ति प्रतीत होती है। मुख कमलपुष्पके समान खिला हुआ है, वह शान्ति लिये हुए है। प्रेमकी तो आप मूर्ति हैं

और आनन्दका श्रोत बह रहा है। उस आनन्दको देखकर पशु-पक्षी भी मुग्ध हो जाते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें इतने तेजोमय नेत्र हों। जितनी कल्पना करेंगे उससे करोड़ों गुना अधिक ही तेज प्रतीत होगा। उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। यदि स्वप्नमें दर्शन होगा तो तुम मुग्ध हो जाओगे। जब उनका मुखकमल समझमें आ जायगा तो उसे नहीं छोड़ सकोगे। वर्तमान ध्यानसे इस प्रकार ध्यानावस्थाका दर्शन विलक्षण है। ध्यानावस्थामें प्रभु दर्शन देते हैं वह अलौकिक दर्शन है, फिर ऐसा ध्यान नहीं छूटता और अन्तकालमें ऐसा ध्यान रहनेसे मुक्ति हो जाती है। हमको अभी वैसा ध्यान हुआ ही नहीं, यदि ध्यान हुआ होता तो ध्यान छूटता ही नहीं। उस ध्यानकी बात सुनकर रोमांच होने लगता है, चित्रके समान बन जाते हैं। जिस ध्यानमें मुग्ध होनेपर खान-पान, निद्रा आदि सब नष्ट हो जाते हैं, उनके मुखारविन्दको एक क्षण भी छोड़कर मन और कहीं किसीकी ओर नहीं ताकता।

भगवान्‌के प्रकट होनेमें जो विलम्ब हो रहा है उसमें प्रेमकी एवं विश्वासकी कमी है, यदि कमी न हो तो भगवान्‌के प्रकट होनेमें विलम्ब नहीं होता, भगवान् प्रेमके आधारपर ही आ सकते हैं। भरतजी कहते हैं—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

आपकी दया और मृदुल स्वभावको देखकर विश्वास होता है कि आप अवश्य मिलेंगे। आँख खोलने और बन्द करनेमें भी समय लगता है, किन्तु भगवान्‌के आनेमें समय नहीं लगता। प्रभु तो हर जगह मौजूद हैं। उनके प्रकट होनेमें क्या समय लग सकता है। आनन्दके उच्चारणके साथ रोमांच हो जाता है, मालूम होता है कि भगवान् एकदम शरीरमें प्रवेश कर गये हों।

रग-रग बोले रामजी रोम-रोम रंकार।

जो इस प्रकारका जप करता है उसके द्वारा तो एक पलमें कोटि नामका उच्चारण हो जाता है। जिस समय इस प्रकारका जप होता है उस समय अपार आनन्द प्रतीत होता है। जिसका जप इस प्रकार होता है वही धन्य है।

भगवान् ध्यानमें क्षणभर भी आ गये तो संसारके सारे सुख सूखे—रसहीन हो जायँगे। जिसको साक्षात् भगवान् मिल जाते हैं फिर उसकी क्या दशा होती होगी? यदि उन परमात्माके लिये प्राण भी देने पड़ें तो हँसते-हँसते दे देना चाहिये। जिस व्यक्तिने इस जीवनमें भगवान्का ध्यान नहीं किया उसका जन्म लेना व्यर्थ ही हुआ, प्राण भले ही चले जायँ, किन्तु ध्यान करके ही छोड़े। जब हम यह बात दृढ़तासे धारण कर लेंगे तो ध्यानकी बात तो दूर रही, साक्षात् भगवान्को आकर दर्शन देना पड़ेगा।

हरेक मनुष्यको सोचना चाहिये कि जैसा सुन्दर स्वरूप बतलाया गया है, वैसा ध्यान होनेपर वह कैसे छोड़ सकता है। वहाँ कोटि कामदेवकी छवि भी एकत्र की जाय तो उनके सामने वह कुछ भी नहीं प्रतीत होगा।

असली ध्यान तो वही है जिसमें भगवान् प्रकट हो जायँ। ध्रुवने अपना ध्यान प्रभुमें लगाया था। वे ध्यानमें इतने मग्न हुए कि प्रभुको प्रकट होना पड़ा। ऐसा ही ध्यान हमें लगाना चाहिये। परमात्मामें ध्यान लगनेपर नहीं छूट सकता। सूरदासजी कहते हैं—

बाँह छुड़ाकर जात हो निबल जान के मोहि।
हिरदेसे जब जाहुगे तब पुरुष बदूँगा तोहि॥

क्या अद्भुत बात है आप बाँह छुड़ाकर तो जा रहे हैं, किन्तु मैं आपको तभी बलवान् समझूँगा जब हृदयसे चले जायँ। ध्यान अपने हाथकी बात है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३०-३१)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

जो निरन्तर ध्यान करता है, उससे प्रभु नहीं हट सकते। भगवान् कहते हैं जो मुझसे अलग नहीं होता, मुझमें सामर्थ्य नहीं कि मैं उससे अलग हो जाऊँ। जो पुरुष ऐसे भगवान्‌को छोड़कर स्त्री, पुत्र, धन आदिमें रमे, उससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा।

भगवान् समभावसे ध्यानमें सदा मौजूद रहते हैं और जब प्रभुका विशेष ध्यान करते हैं, तब प्रकाशके रूपमें प्रकट हो जाते हैं। आनन्द, ज्ञान, शान्ति यह भगवान्‌का निराकार स्वरूप है तथा प्रकाश साकार है। अहा! देखो, आकाशमें प्रभुकी कैसी मूर्ति स्थित है। ओष्ठ बिम्ब फलके समान लाल हैं, नासिकाकी सुन्दरता निराली है, नेत्र कितने सुन्दर हैं। ऐसी आकृति जब मनुष्य देख लेता है तब उसमें आनन्द नहीं समाता। ध्रुवजीके समान मुग्ध हो जाता है। प्रभुकी भृकुटी विशाल और भौंहपर काले-काले केश हैं। कानोंमें रत्नजटित मकराकृति कुण्डल हैं। प्रभु जब देखते हैं तो सारी दुनियाको मोहित कर देते हैं,

उनके नेत्रोंमें अपार समता, आनन्द, शान्ति, तेज, ज्ञान प्रतीत होता है। उनका मुख अमृतमें भीगा हुआ-सा दीखता है। देखनेवालेको प्रतीत होता है कि मैं नासिकासे, मुँहसे अमृतका पान कर रहा हूँ। प्रभुके पैर और हाथोंकी लाली निराली है। दर्शनसे मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ प्रफुल्लित हो जाती हैं। स्पर्श करनेसे सारे शरीरमें रोमांच और कम्प होता है। मन आनन्दमय बन जाता है। प्रभुके चरण बड़े कोमल, सुन्दर और चिकने हैं, वैसे ही ग्रीवा भी है, भुजाएँ हृष्ट-पुष्ट हैं। प्रभुका स्वरूप अद्‌भुत-दिव्य है। गलेमें कई प्रकारकी मालाएँ हैं, हृदयमें लक्ष्मीके चित्रको धारण कर रखा है, उसके ऊपर भृगुलताका चिह्न है। मन्द-मन्द हँस रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानो फूल खिल रहे हैं। प्रभुका स्वरूप स्वयं ही बना हुआ है, किसीका बनाया हुआ नहीं है, उनका मुखारविन्द चन्द्रमासे बढ़कर चमक रहा है, नेत्रोंसे मैं आनन्दका पान कर रहा हूँ। भगवान्‌के आनन्दका गुण गानेमें वाणी थकती नहीं है। वंशीकी कैसी अद्‌भुत ध्वनि है। वंशीसे भगवान् प्रेम और वेदका उपदेश सुनाया करते हैं तथा जगत्‌को मोहित करते रहते हैं। इसीलिये आपका नाम मनमोहन है। कम-से-कम ऐसा ध्यान तो बना ही रहना चाहिये। जिसका ऐसा ध्यान हो जाता है, उसके शरीरका टुकड़ा-टुकड़ा कर डालनेपर भी उसे दुःख नहीं होता, जैसे राजा मयूरध्वजकी कथा इस प्रकार है—

द्वापरके अन्तमें रत्नपुरके अधिपति महाराज मयूरध्वज एक बहुत बड़े धर्मात्मा तथा भगवद्‌भक्त संत हो गये हैं। इनकी धर्मशीलता, प्रजावत्सलता एवं भगवान्‌के प्रति इनका स्वाभाविक अनुराग अतुलनीय ही था। इन्होंने भगवत्प्रीत्यर्थ अनेकों बड़े-बड़े यज्ञ किये थे, करते ही रहते थे।

एक बार इनका अश्वमेधका घोड़ा छूटा हुआ था और उसके साथ इनके वीर पुत्र ताम्रध्वज तथा प्रधान मन्त्री सेनाके साथ रक्षा करते हुए घूम रहे थे। उधर उन्हीं दिनों धर्मराज युधिष्ठिरका भी अश्वमेध यज्ञ चल रहा था और उनके घोड़ेके रक्षकरूपमें अर्जुन और उनके सारथि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण साथ थे। मणिपुरमें दोनोंकी मुठभेड़ हो गयी।

उन दिनों भगवान्‌के सारथ्य और अनेकों वीरोंपर विजय प्राप्त करनेके कारण अर्जुनके मनमें कुछ अपनी भक्ति तथा वीरताका गर्व-सा हो गया था। सम्भव है इसीलिये अथवा अपने तथा छिपे हुए भक्तकी महिमा प्रकट करनेके लिये भगवान्‌ने एक अद्भुत लीला रची। परिणामतः युद्धमें श्रीकृष्णके ही बलपर मयूरध्वजके पुत्र ताम्रध्वजने विजय प्राप्त की और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंको मूर्च्छित करके वह दोनों घोड़ोंको अपने पिताके पास ले गया। पिताके पूछनेपर मन्त्रीने बड़ी प्रसन्नतासे सारा समाचार कह सुनाया। किन्तु सब कुछ सुन लेनेके पश्चात् मयूरध्वजने बड़ा खेद प्रकट किया। उन्होंने कहा—'तुमने बुद्धिमानीका काम नहीं किया। श्रीकृष्णको छोड़कर घोड़ेको पकड़ लेना या यज्ञ पूरा करना अपना उद्देश्य नहीं है! तुम मेरे पुत्र नहीं, बल्कि शत्रु हो, जो भगवान्‌के दर्शन पाकर भी उन्हें छोड़कर चले आये।' इसके बाद वे बहुत पश्चात्ताप करने लगे।

उधर जब अर्जुनकी मूर्च्छा टूटी, तब उन्होंने श्रीकृष्णजीसे घोड़ेके लिये बड़ी व्यग्रता प्रकट की। भगवान् अपने भक्तकी महिमा दिखानेके लिये स्वयं ब्राह्मण बने और अर्जुनको अपना शिष्य बनाया तथा दोनों मयूरध्वजकी यज्ञशालामें उपस्थित हुए। इनके तेज और प्रभावको देखकर मयूरध्वज अपने आसनसे उठकर नमस्कार करनेवाले ही थे कि इन्होंने पहले ही 'स्वस्ति'

कहकर आशीर्वाद दिया। मयूरध्वजने इनके इस कर्मको अनुचित बतलाते हुए इन्हें नमस्कार किया और स्वागत-सत्कार करके अपने योग्य सेवा पूछी। ब्राह्मणवेशधारी भगवान्‌ने अपनी इच्छित वस्तु लेनेकी प्रतिज्ञा कराकर बतलाया—'मैं अपने पुत्रके साथ इधर आ रहा था कि मार्गमें एक सिंह मिला और उसने मेरे पुत्रको खाना चाहा। मैंने पुत्रके बदले अपनेको देना चाहा, पर उसने स्वीकार नहीं किया। बहुत अनुनय-विनय करनेपर उसने यह स्वीकार किया है कि राजा मयूरध्वज पूर्ण प्रसन्नताके साथ अपनी स्त्री और पुत्रके द्वारा अपने आधे शरीरको आरेसे चिरवाकर मुझे दे दें, तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ सकता हूँ।' राजाने बड़ी प्रसन्नतासे यह बात स्वीकार कर ली। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि इस वेशमें स्वयं भगवान् ही मेरे सामने उपस्थित हैं। वह बात सुनते ही सम्पूर्ण सदस्योंमें हलचल मच गयी। साध्वी रानीने अपनेको उनका आधा शरीर बताकर देना चाहा, पर भगवान्‌ने दाहिने अंशकी आवश्यकता बतलायी। पुत्रने भी अपनेको पिताकी प्रतिमूर्ति बताकर सिंहका ग्रास बननेकी इच्छा प्रकट की; पर भगवान्‌ने उसके द्वारा चीरे जानेकी बात कहकर उसकी प्रार्थना भी अस्वीकार कर दी।

अन्तमें दो खंभे गाड़कर उनके बीचमें हँसते हुए और उच्चस्वरसे भगवान्‌के 'गोविन्द', 'मुकुन्द', 'माधव' आदि मधुर नामोंका सस्वर उच्चारण करते हुए मयूरध्वज बैठ गये और उनके स्त्री-पुत्र आरा लेकर उनके सिरको चीरने लगे। सदस्योंने आपत्ति करनेका भाव प्रकट किया; परन्तु महाराजने यह कहकर कि 'जो मुझसे प्रेम करते हों, मेरा भला चाहते हों, वे ऐसी बात न सोचें' सबको मना कर दिया। जब उनका शरीर चीरा जाने लगा, तब उनकी बायीं आँखसे आँसूकी कुछ बूँदें निकल पड़ीं, जिन्हें

देखते ही ब्राह्मणदेवता बिगड़ गये और यह कहकर चल पड़े कि 'दु:खसे दी हुई वस्तु मैं नहीं लेता।' फिर अपनी स्त्रीकी प्रार्थनासे मयूरध्वजने उन ब्राह्मणदेवताको बुलाकर बड़ा आग्रह किया और समझाया कि 'भगवन्! आँसू निकलनेका यह भाव नहीं है कि मेरा शरीर काटा जा रहा है; बल्कि बायीं आँखसे आँसू निकलनेका भाव है कि ब्राह्मणके काम आकर दाहिना अंग तो सफल हो रहा है, परन्तु बायाँ अंग किसीके काम न आया। बायीं आँखके खेदका यही कारण है।'

अपने परम प्रिय भक्त मयूरध्वजका यह विशुद्ध भाव देखकर भगवान्‌ने अपने-आपको प्रकट कर दिया। शंख-चक्र-गदाधारी, चतुर्भुज, पीताम्बर पहने हुए, मयूरमुकुटी प्रभुने अभयदान देते हुए उनके शरीरका स्पर्श किया और स्पर्श पाते ही मयूरध्वजका शरीर पहलेकी अपेक्षा अधिक सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ट हो गया। वे भगवान्‌के चरणोंपर गिरकर स्तुति करने लगे। भगवान्‌ने उन्हें सान्त्वना दी और वर माँगनेको कहा। उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें अविचल प्रेम माँगा और आगे चलकर 'वे भक्तोंकी ऐसी परीक्षा न लें' इसका अनुरोध किया। भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे उनकी अभिलाषा पूर्ण की और स्वयं अपने सिरपर कठोरताका लांछन लेकर भी अपने भक्तकी महिमा बढ़ायी। अर्जुन उनके साथ-ही-साथ सब लीला देख रहे थे। उन्होंने मयूरध्वजके चरणोंपर गिरकर अपने गर्वकी बात कही और भक्तवत्सल भगवान्‌की इस लीलाका रहस्य अपने घमंडको चूर करना बतलाया। अन्तमें तीन दिनोंतक उनका आतिथ्य स्वीकार करनेके पश्चात् घोड़ा लेकर वे दोनों चले गये और मयूरध्वज निरन्तर भगवान्‌के प्रेममें छके रहने लगे।

खूब ध्यान लगाओ, खूब प्रेम करो, ऐसा विश्वास करो कि

आज भगवान् अवश्य प्रकट होंगे, फिर विलम्ब नहीं होता। अभी हमारी आशा-प्रतीक्षामें कमी है।

प्रभुका जन्म अलौकिक है, दिव्य है। भगवान् अकेले नहीं आते। जैसे भगवान् रामचन्द्रजीके साथ लक्ष्मणजी, भरतजी, शत्रुघ्नजी आये, वैसे ही श्रीकृष्णजीके साथ भी बलरामजी एवं बहुतसे गोप, गोपी उनके साथ लीला करनेके लिये आये थे। जो भगवान्‌के प्रेमी होते हैं, उनके चरणोंकी धूलि भी महान् पवित्र होती है। उद्धवजी कहते हैं कि प्रभु मुझे वृन्दावनमें लता-पत्ता बनायें, जहाँपर गोपियोंकी चरणधूलि लग-लगकर मैं पवित्र हो जाऊँगा। प्रभुके ऐसे भक्तोंसे यदि मिलन हो जाय तो फिर भगवान्‌से मिलनेकी परवाह न करे, उससे भगवान् स्वयं आकर मिलते हैं।

जो भगवान्‌के रहस्यको जान जाता है, सभीको भगवान्‌का स्वरूप समझता है, वह स्वतः आनन्दमय बन जाता है।

❑ ❑

व्यापारसे भगवत्प्राप्ति

आज प्रवचनके लिये व्यापारका विषय रखा गया है कि सत्यतासे व्यापार कैसे करना चाहिये तथा व्यापारमें क्या सुधार करना चाहिये? प्रारब्धमें जो कुछ पैदा होना होगा सो तो होगा ही, फिर झूठ क्यों बोलते हैं। प्रारब्ध भी कोई चीज है ऐसा विश्वास रखना चाहिये। हजारों व्यक्तियोंमें कोई एक उस परमात्माकी प्राप्तिके लिये उपाय करता है और उन उपाय करनेवाले हजारोंमें एकको भगवत्प्राप्ति होती है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७।३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

व्यापार भगवत्प्राप्ति करनेका एक हथियार है। इस हथियारसे संसारकी सेवा करनी चाहिये। रुपया कमाना ध्येय न रखकर भगवत्प्राप्तिका ही ध्येय रखना चाहिये। रुपये तो जितने पैदा होने होंगे, उतने होंगे ही। न्याययुक्त अच्छा कार्य करनेमें घाटा लगता है तो ध्यान रखना चाहिये कि घाटा न लगे। जिस रास्तेसे भगवान् मिलते हैं उसमें घाटा भी लगे तो भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। भगवान् मिल गये यह क्या कम लाभ रहा। भगवत्प्राप्तिके लिये व्यापार करनेमें किसी प्रकारका व्यवहार नहीं बदलना है, केवल उद्देश्य बदलकर ही कार्य करना चाहिये। भगवान्के लिये झूठ बोलना, चोरी करनी पड़े तो ये कार्य तो भगवत्-कार्यमें

प्रवचन—दिनांक १३-६-१९३६, शनिवार, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

सर्वथा बाधक ही हैं, इसलिये इनका त्याग अत्यन्त आवश्यक है। धर्मयुक्त और न्याययुक्त व्यापार करनेका फल स्वर्ग तो मिल सकता है, मुक्ति नहीं मिल सकती, मुक्ति तो निष्कामभावसे ही कार्य करनेपर मिल सकती है। रुपयोंको आदर न दे, स्वार्थ त्याग करके कर्म किये बिना मुक्ति कठिन है।

वैश्यके लिये व्यापारसे बढ़कर धर्म ही नहीं है, जैसे गीतामें अर्जुनके लिये लड़ाई धर्म बतलाया है। अर्जुनने लड़ाई की, कई आदमियोंको मारा, परन्तु उद्देश्य परमेश्वरप्राप्ति ही रखा। व्यापार धर्म समझकर करना चाहिये। न्यायालयमें कर्तव्य समझकर जाना चाहिये। हारना-जीतना, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु ये ईश्वरके हाथ ही हैं।

सबको आराम किस तरह मिले, उसीकी चेष्टा करे। चमड़ा, चरबी, हाड़, माँस आदिका व्यापार न करे। आपलोगोंको सोचना चाहिये कि आजतक तो लक्ष्मी (धन)-की प्राप्तिके लिये व्यापार किया, अब उनके पतिकी प्राप्तिके लिये व्यापार करना चाहिये। सब आदमियोंमें लोभका दोष आता है, एक तो रुपयोंका लोभ, दूसरा मान-बड़ाईका लोभ। इन दोनों दोषोंको निकाल देनेपर फिर कोई दोष पास नहीं फटकता। इन दोको सुधारनेसे सब दोष सुधर जाते हैं, किन्तु ध्यान रहे कि इन दोषोंको निकालनेमें दिखावामात्र न होवे। दूसरोंको आराम पहुँचानेके उद्देश्यसे ही कल्याण हो सकता है। वैश्यके लिये व्यापार करना कर्म बतलाया गया है, इसलिये व्यापारद्वारा दुनियाको आराम पहुँचाना ही ध्येय रखे।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

(गीता १२। १२)

मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है। सबसे ध्यान नहीं बन सकता है और व्यापारका काम सबसे हो सकता है, व्यापारके द्वारा ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

सूर्य समुद्रसे जल उठाकर खेतोंमें वर्षा करता है, उसी तरह बड़ी कम्पनीसे रुपया उठाकर गरीबकी सहायता करे अर्थात् उन्हें मजदूरी करवाकर लाभ पहुँचाये। गरीब आदमीसे अत्यन्त दयाका बर्ताव करे। रुपयोंका संग्रह करे किन्तु उनमें ममता न रखे, यही सोचे कि परमेश्वरका ही है। वास्तविक त्यागसे विश्वको भी जीतनेवाला यज्ञ हो सकता है। विश्वजित्-यज्ञ उसीका नाम है। जो अपना तन, मन, धन परमात्माके अर्पण कर दे, उसने भगवान्‌को जीत लिया यानि भगवान् उसके अधीन हो गये या उसे भगवत्प्राप्ति हो गयी।

दूसरेके हितके लिये अपना सर्वस्व देना बड़ी अच्छी बात है, त्यागका भी बड़ा भारी महत्त्व है, किन्तु मामूली बातके लिये दैवी शक्ति खर्च करना मूर्खता है।

झूठ बोले बिना व्यवहार नहीं होता, ऐसी बात नहीं है। सत्यसे व्यवहार हो सकता है। उस जमानेमें तुलाधार वैश्य था; उसका व्यापार अच्छी तरह चलता था। इन सारी बातोंको सोचते हुए न्याययुक्त, धर्मयुक्त, दूसरोंको लाभ हो तथा सबकी सेवा हो ऐसा ही व्यापार करना चाहिये, ध्येय भगवत्प्राप्तिका रखना चाहिये।

❑ ❑

निराकारका ध्यान

आजके प्रवचनमें देहके अभिमानका नाश और निराकारके ध्यानका विषय है। जबतक देहमें अभिमान है तबतक साधन नहीं हो सकता। जब देहमें अभिमान नष्ट हो जाता है, तभी साधन सुगम हो जाता है। देहाभिमान ईश्वरकी भक्तिसे नष्ट हो सकता है। ईश्वरकी भक्तिको समझनेका विषय अत्यन्त सूक्ष्म है। नित्य सत्संग करनेसे समझमें आता है। नारायणका नाम उच्चारण करनेसे सारे विक्षेपोंका नाश हो जाता है और बाहरका वातावरण भी साफ होकर बड़ा पवित्र हो जाता है तथा स्वाभाविक शान्ति प्राप्त होती है। सभी शास्त्र-ग्रन्थ इस बातको मानते हैं। सच्चिदानन्दका ध्यान और भगवन्नामका जप इन दो बातोंसे सब विक्षेप एवं अहंकारका नाश होकर भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवन्नाम उच्चारण करनेसे जिस नामका स्मरण किया जाय, उधर ही लक्ष्य बँधेगा। आज निराकार भगवान्‌के ध्यानका विषय है। साकारका ध्यान रखते हुए भी निराकारका साधन हो सकता है। निर्गुण निराकार ब्रह्मका ध्यान दो प्रकारसे होता है—भेदरूपसे और अभेदरूपसे। ऐसे ही साधनकी कई युक्तियाँ हैं। भगवान् कहते हैं जो श्रद्धासे मेरा ध्यान करते हैं, वे ही सबसे उच्च योगी हैं।

आनन्द, बोध, शान्ति निराकार परमात्माका स्वरूप है। इनकी स्थापनाके लिये ध्यान करना चाहिये।

हमलोग भविष्यकी स्थितिके बारेमें नहीं सोचते कि शरीरका अन्तमें क्या होगा? हम धन कमा रहे हैं मरनेपर यह क्या काम आयेगा? ये सारी बातें अज्ञानपूर्ण हैं। हम उन्मत्तकी तरह चल

प्रवचन—दिनांक १४-६-१९३६, रविवार, प्रातः, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

रहे हैं। जो हमारे लाभकी वस्तु है उसे ही छोड़ रहे हैं, भोगकालमें सुख माना जाता है, परन्तु उसका परिणाम दुःख ही है, इससे सिद्ध हुआ कि संसारमें दुःख-ही-दुःख है। केवल सुख तो परमात्माकी प्राप्तिमें है। परमात्माको प्राप्त करनेवाला आदमी करोड़ोंमें कोई एक ही मिलता है, बाकी सब दुःखी ही हैं। विद्या पढ़े-लिखे भी बहुत कम हैं। आजकलकी विद्यामें पास लोग बी०ए०, एम०ए० तो हो गये, किन्तु उन्हें पता नहीं मरनेपर उनके शरीरका क्या होगा? कहाँसे आया था? आत्मा क्या है? इसका कुछ भी पता नहीं है। यह मूर्खता ही है। फिर विद्याका मूल्य क्या हुआ। जिस विद्यासे सब बातें अपने-आप मालूम हो जाती हैं, वह विद्या नहीं पढ़ी। खाना, भोगना आदि सब कार्य तो पशुको भी मालूम है। पशुसे पूछनेपर वह कुछ नहीं बता सकता, किन्तु उसको अपने स्वार्थका पूरा ज्ञान है। इसी तरह वह पढ़ा-लिखा मनुष्य भी है, उसमें और पशुमें कुछ अन्तर नहीं है। इससे यही मालूम हुआ कि संसारमें ज्ञान नहीं है, सुख नहीं है, प्रकाश नहीं है, अपितु इससे विपरीत बातें ही पूर्णरूपसे भरी पड़ी हैं।

यह स्थूल शरीर है, इसके अन्दर एक सूक्ष्म शरीर है, उसके निकल जानेकी स्थितिको मरना कहते हैं। जो स्वप्न देखते हैं, वह सूक्ष्म शरीरसे ही देखा जाता है। ध्यान करते समय सूक्ष्म शरीरको स्थूल शरीरसे बाहर निकाले, बाहर आकर सब कुछ देखे, अपने स्थूल शरीरको भी दूसरा ही देखे। जब इस शरीरको पृथक् देखेंगे तो शरीरकी बीमारी दुःख नहीं दे सकती। आत्मा चेतन है, और शरीर जड़ है। आत्मासे शरीर अलग है और जड़ है। जिस तरह कटे पैरको शरीरसे अलग देखते हो, उसी प्रकार शरीरको आत्मासे अलग देखो। सूक्ष्म शरीरसे बाहर आ जानेपर फिर अन्दर न जाओ। इसके पश्चात् ज्ञानद्वारा सूक्ष्मरूपको भी

छोड़ दो और निराकार-रूपमें आ जाओ। ज्ञान हमारा स्वरूप है, चेतन हमारा स्वरूप है, आनन्द हमारा स्वरूप है ऐसा ही देखे। देखनेवाला ही चिन्मय चेतन है। दोनों शरीर छोड़ देनेपर कैसे देख रहे हैं? सारे ब्रह्माण्डोंको संकल्पमात्रसे देख रहे हैं। देखनेवाला ही चिन्मय चेतन है। इस तरह आकाशके सहित सारे ब्रह्माण्डमें स्थित होकर संकल्पमात्रसे देख रहा है। आकाश निराकार है, किन्तु जड़ है। वह चेतन ज्ञानस्वरूप है और सारा ब्रह्माण्ड गेंदकी तरह है। गेंदके आसपास आकाशरूपमें निराकार-रूपमें भगवान् हैं।

एक स्त्री है, वही एकको बाधक है और एकको साधक है। राग-द्वेष ही हमें सुख-दुःखके देनेवाले हैं। सुषुप्ति अवस्थामें राग-द्वेष नहीं रहता। राग-द्वेष तो जाग्रत् अवस्थामें ही होता है। जिस अवस्थामें राग-द्वेषका ज्ञान है, वही राग-द्वेष है, वही बाधक है। कल्पनाकी वस्तुका मूल्य नहीं रहता। जैसे आँख बंद करनेसे कुछ नहीं दीखता, उसी तरह मनको रोको। आँख बन्द करनेपर नहीं देख सकते, मौन रहनेसे नहीं बोल सकते, उसी तरह मनको रोकनेसे वह दूसरी बातका चिन्तन नहीं कर सकता। ये सब तुम्हारे अधिकारकी बातें हैं और हो सकती हैं। आँखें तुम्हारी हैं, स्त्रीकी तरफ जाती हों तो उन्हें सजा दो, मन यदि विषयका चिन्तन करता है तो उसे भी दण्ड दो, धीरे-धीरे सभी कामनाओंका त्याग कर दो। मनको खूब समझाओ। साम-दामसे नहीं समझे तब दण्ड दो। बार-बार प्रयत्न करो और यही विश्वास रखो कि मेरी विजय होगी। काम-क्रोधको मार डालो। ऐसा सदा विश्वासपूर्वक खयाल रखो।

परमात्मा सत्य है, चेतन है, साक्षी है, नित्य है, अचिन्त्य है, इस प्रकार निराकार-स्वरूपका ध्यान करनेसे वह परमात्माको

प्राप्त हो जाता है। सावधानी रखे, ज्ञानको नहीं भूले, ज्ञानको जहाँ भूले वहीं अज्ञान आ पकड़ेगा। जहाँ पूरा आनन्द नहीं आता है वहाँ समझना चाहिये कि अभी अज्ञानका परदा पूरा नहीं हटा है। जैसे घटाकाश छोटा होता है, फूटनेपर बड़ा भारी आकाश-ही-आकाश शेष रह जाता है, उसी तरह आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। शान्त चित्तसे बैठकर ध्यान करे। अपने चारों तरफ भगवान्-ही-भगवान् हैं। भगवान्‌का स्वरूप आकाशके समान निराकार है, भगवान् आनन्दस्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, जैसे बरफ पानीके आधारपर है, उसी प्रकार तुम भगवान्‌के आधारपर हो। भगवान्‌के आनन्दका कोई ठिकाना नहीं। आनन्द-ही-आनन्द दीखता है। फिर संसारका संकल्प क्यों किया जाय। मूर्ख ही संसारका संकल्प करते हैं। जहाँ आनन्दका ठिकाना ही नहीं सभीमें वही विराजमान हैं, उन्हें देखता ही रहे। जो कुछ भी है सब आनन्दमय ही है।

❑ ❑

घर-घरमें मूर्तिपूजा

हरेक व्यक्ति अपने-अपने घरमें भगवान्‌की मूर्तिका पूजन करे तो उत्तम बात है, स्त्रियोंको चाहिये कि अपने पतिके साथ ही तीर्थ व मन्दिर आदिमें जायँ। जहाँतक हो सके वहाँतक घरमें ही भगवान्‌की मूर्ति रखकर दर्शन करना उत्तम है। मन्दिरोंमें जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रतिष्ठित मन्दिरमें जानेकी आवश्यकता होनेपर पतिके साथ ही जाना चाहिये। भगवान्‌की आराधना स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं। उससे अपने-आप परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९।३२)

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८।६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

भगवान्‌की भक्तिसे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। जब भगवान् स्वयं उसके आधीन हो जाते हैं तो और क्या बाकी रहा। कलियुगमें बहुत-से भक्तोंको भगवान् मिले हैं। जो भगवान्‌के मिलनेमें शंका रखता है, वह भक्त होते हुए भी दर्शनसे

प्रवचन—दिनांक १५-६-१९३६, सोमवार, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

वंचित रह सकता है। वे नहीं मिल सकते या नहीं मिलते हैं, यह कहना मूर्खता है। कहनेवाला सर्वज्ञ नहीं है, इसलिये उसे ऐसा कहनेका अधिकार ही नहीं है। यदि कोई चीज हमारे देखनेमें नहीं आयी तो हम ऐसा कैसे कह सकते हैं कि वह चीज नहीं होती, क्योंकि हम संसारके छोटेसे एक कोनेमें पड़े हैं। हम संसारकी सारी वस्तुओंको कैसे समझ सकते हैं। इसलिये भगवान् नहीं हैं, ऐसा कहना मूर्खता ही तो है।

सब आदमियोंको सभी वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं होती है। शूद्रोंको वेद पढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। उनका उद्धार वेद पढ़नेसे जितनी जल्दी नहीं हो सकता, उतनी जल्दी भक्ति और सेवासे हो सकता है। वैसे ही स्त्रीका उद्धार भी जितनी जल्दी पतिकी सेवासे हो सकता है, उतनी जल्दी उद्धार होनेका और कोई उपाय नहीं है। ब्राह्मणको वेद पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। वे यदि सेवा-कार्य करें तो उनका उद्धार नहीं हो सकता, इसलिये उन्हें वेद पढ़नेकी आवश्यकता है। जितनी बातोंकी शास्त्रोंमें व्यवस्था की गयी है, उनमेंसे हम पूर्ण रीतिसे थोड़ी भी पालन नहीं कर रहे हैं। भगवान्‌की भक्तिसे साक्षात् दर्शन हो सकते हैं। वेद पढ़नेसे भी जैसे दर्शन नहीं हो सकते, वैसे अनन्य भक्तिसे हो सकते हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

(गीता ११।५३)

जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है—इस प्रकार चतुर्भुज-रूपवाला मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११।५४)

परन्तु हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

ऐसा सोचकर हरेक भाईको साधनमें लग जाना चाहिये। हमारी आत्माका कल्याण तो गीताके एक श्लोकसे ही हो सकता है।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०।९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही रमण करते हैं।

इस श्लोकको धारण करनेवालेकी बड़ी भारी महिमा भगवान्ने गायी है। आगे इसका फल कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०।१०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भजन, ध्यान, सत्संग इन सबमें स्त्री-पुरुष सबका समान

अधिकार है। बुद्धि देना, न देना भगवान्‌का काम है। वे चाहे दर्शन दें, चाहे न दें, यह भगवान् ही जानें। अपना कार्य तो भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग आदि करनेका है। मुक्तिकी इच्छा भी नहीं करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छा भी सकाम भाव है।

सगुणका ध्यान करते समय आसनसे बैठना चाहिये। ध्यानके पहले वैराग्यकी आवश्यकता है। पवित्र स्थान यह है ही। भागीरथीका तट है, तीर्थ है और भगवच्चर्चा चल रही है। ऐसे समयमें वैराग्य होना स्वाभाविक-सी बात है।

नाम-नामी एक ही वस्तु है, जहाँ कीर्तन होता है वहाँ भगवान्‌का नाम ही भगवान् है। भगवान् गुप्तरूपसे प्रकट रहते हैं, साक्षात् प्रकट होनेमें श्रद्धाकी कमी है।

ध्यानके समय सारे संसारसे वृत्तियोंको हटाकर बैठना चाहिये। मनको समझाकर भगवान्‌की ओर लगाना चाहिये। भगवान्‌के सिवाय और किसीमें आनन्द नहीं है, इसलिये भगवान्‌से ही प्रेम करना चाहिये। भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये—हे नाथ! आप ऐसी बुद्धि दीजिये, जिससे मैं आपको क्षणभर भी न बिसार सकूँ, आपकी आज्ञाओंका पालन करता रहूँ। मैं कहता हूँ और चाहता हूँ कि आपका बनूँ, परन्तु नहीं बन पाता हूँ। संसारके विषयोंमें लिपायमान होनेके कारण मैं अभीतक अनन्य शरण नहीं हो सका हूँ। आप ही मेरे कल्याणका मार्ग बताइये, मैं आपकी शरण हूँ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २।७)

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि

जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

हे नाथ! संसारमें मेरा जितना प्रेम है, वह सब हटकर आपमें हो जाय। प्रभु इतना तो होना चाहिये कि आपका ध्यान तो बना रहे। आपके नाम-गुणका कीर्तन आपके भक्तोंद्वारा सुनता रहूँ, स्वयं करता रहूँ। बस फिर मेरा जन्म घोर नरकोंमें हो तो भी कोई आपत्ति नहीं है। भगवान् प्रसन्न होकर वरदान माँगनेके लिये कहें तो यही माँगना चाहिये कि आप मुझे सदा अपने चरणोंमें ही रखें, आपसे मेरा कभी वियोग न हो, मैं आपके मुखारविन्दका दर्शन करता रहूँ, मैं आपकी सेवासे अलग न होऊँ। सेवाके दो पात्र हैं एक तो महान् सुखी, दूसरे महान् दुःखी, सबसे महान् सुखी आप हैं और सबसे महान् दुःखी संसारके नरकभोगनेवाले जीव हैं। मुझे आप या तो आपकी सेवामें ही रखिये या उनकी सेवामें रखिये। उनको आपके गुण-प्रभावकी बातें बताकर उन्हें भी आपकी शरणमें ला सकूँ। युधिष्ठिरजीके थोड़ी देर नरकके जीवोंके पास जानेसे उन जीवोंको कितना आनन्द हुआ, उन्होंने स्वर्गमें जानेसे इन्कार कर दिया, कहा कि मैं यहीं रहना चाहता हूँ। इन जीवोंको मेरे यहाँ रहनेसे सुख है तो मैं इन्हें यहाँ दुःखी छोड़कर स्वर्गमें जाकर क्या लाभ उठा सकता हूँ? ऐसे भक्त तो भगवान्से यही वरदान माँगते हैं कि हम नरकोंके जीवोंको उपदेश करें, उनकी सेवा करें, उनको आपका गुण-प्रभाव बतायें, आपकी ओर आकर्षित करें, यही वरदान दीजिये।

नामजपसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। जो जप करता है वह मुग्ध हो जाता है। जिनमें प्रेम है उन्हें सर्वोच्च आनन्द आता है।

जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।
जैसे चिनगी अग्निकी परी पुरानी घास॥

नामको हृदयमें रखते ही सारे पापोंका नाश हो जाता है। पूर्ण विश्वासकी आवश्यकता है। भगवान्‌का नाम केवल पापके नाशके लिये ही नहीं लिया जाना चाहिये। नामका उच्चारण तो प्रेमकी प्राप्तिके लिये करना चाहिये। पाप तो भक्तोंकी मुग्धता देखनेसे ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिये नामजपके लिये सर्वोच्च ध्येय प्रेम ही होना चाहिये। प्रेमका हेतु तो प्रेम ही है। जब प्रेम हो जायगा तो भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे। इससे कई जीवोंका कल्याण हो सकता है। ऐसे भक्त यदि अतीर्थमें भी जायँ तो वे भी तीर्थ बन जाते हैं।

हमारेमें जितना लोभ है, सब भगवान्‌का दर्शन होनेकी ओर लगा देना चाहिये और क्रोधके द्वारा अपनी इन्द्रियोंपर विजय करनी चाहिये, उनको संयममें लाना चाहिये। केवल भगवान्‌की ओर ही प्रेम बढ़ाना चाहिये। भगवत्प्रेमके समान कुछ भी नहीं है, भजन तो साधन है और प्रेम है साध्य, साध्य वस्तु भगवत्प्रेम ही है।

जब रामजीका ध्यान करते हैं तो रामजीकी मूर्ति सामने आ ही जाती है। ध्यान लगाते समय यह श्लोक ध्यानमें लानेसे सुगमता होती है—

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

(गीता ६।१४)

ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे।

एकान्तमें बैठकर ध्यान करना चाहिये। ध्यानसे आलस्य, स्फुरणा, अशान्तिका एकदम अभाव हो जाता है और चित्तको शान्ति प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करनेसे भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् रूपमें प्रकट हो जाते हैं। भगवान् मुसकरा रहे हैं, कितना अद्‌भुत प्रकाश है, नेत्रोंमें कितना प्रेम है। जिनको आपका दर्शन हो गया, वह भी आपके समान प्रेममय दिव्य हो गया। भगवान्‌का मस्तक कैसा चमक रहा है, तिलक कितना सुन्दर है, काले-काले बाल कितने सुन्दर हैं, मोरका मुकुट कितना सुन्दर है। प्रभुकी कमर भी टेढ़ी, नाक भी टेढ़ी, मुकुट भी टेढ़ा है, इसीलिये आपका नाम बाँकेबिहारी है। प्रभुका अमृतमय रूप है। मन करता है कि देखते ही रहें। प्रभुमें कितनी दया, शान्ति और प्रकाश है, कितना प्रेम है। भगवान् कहते हैं कि मैं पवित्रोंसे पवित्र हूँ, मंगलोंका भी मंगल हूँ, ऐसा मंगलमय स्वरूप हमारे ध्यानमें प्रकट है। ऐसे भगवान्‌को निरन्तर देखते रहें, मुग्ध होते रहें।

❑ ❑

अनित्यका त्याग आवश्यक

शरीरके आरामकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। धन, मान और बड़ाईका त्याग करना चाहिये। ये चार बातें भगवान्‌के दर्शनमें सहायक हैं—भजन, ध्यान, सत्संग और पवित्र स्थान। इन चारोंका आश्रय लेनेसे भगवान्‌के साक्षात् दर्शन बहुत शीघ्र हो सकते हैं। ध्यान या भजन करते समय मृत्यु हो जाय तो परम गति मिलती है। काशीमें मरनेसे कल्याण तो हो जाता है, किन्तु साथमें भजन-ध्यान भी हो तो अति उत्तम है। बहुत-से लोग काशीमें जाकर भजन, ध्यान छोड़ देते हैं यह बुरी बात है। हरेक व्यक्तिको चारों बातोंके लिये प्रयास करना चाहिये। घरवालोंको, स्त्रीको, बच्चोंको सभीको भगवान्‌के स्मरणमें लगाना चाहिये, सत्संगमें लगाना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन, विद्या आदिमें आसक्ति और ममता नहीं रखनी चाहिये। स्त्री-पुत्र आदिसे प्रेम उन्हींके हितके लिये करना चाहिये। अपने स्वार्थके हेतु नहीं करना चाहिये। रुपयों-पैसोंको व्यवहारमें तो रुपये-पैसे ही समझे और मनमें कंकड़-पत्थरकी भावना करनी चाहिये।

हरेक व्यक्तिको परमात्माका कुछ-कुछ ज्ञान है, परन्तु वह परोक्ष ज्ञान है। जिसे भगवत्प्राप्ति हो गयी है, उसका ज्ञान सच्चा ज्ञान है। यदि सब साधकोंका ज्ञान इकट्ठा कर लें तो भी वह ज्ञान भगवत्प्राप्तिवाले सिद्धके ज्ञानकी एक बूँदके बराबर भी नहीं उतरेगा। इसी तरह लोग शान्ति, शान्ति कहते और सुनते हैं, परन्तु पता नहीं है कि शान्ति क्या चीज है। परम निर्वाणरूपी शान्तिका पता लगानेके लिये बड़ा उतावला हो जाना चाहिये।

मनको समझानेकी आवश्यकता है कि तू अनित्यके लोभमें

प्रवचन—दिनांक १५-६-१९३६, सोमवार, रात्रि, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

फँसकर नित्य वस्तुको क्यों खो रहा है? हम भोजन कर रहे हैं उसमें जो स्वाद आ रहा है वह झूठा है। यह स्वाद जो आ रहा है, वह तो स्वादका अन्त हो रहा है। थोड़ी देर बाद तुम खाना बन्द कर दोगे, परन्तु भगवान्‌की ओरका जो स्वाद है, वह नित्य है। वह तो सदा आता रहेगा, इसलिये उस नित्य स्वादको प्राप्त करना चाहिये।

जिसका नाश हो रहा है, उसको तो पकड़ रखा है। काँचके टुकड़ोंसे, पत्थरके ठीकरोंसे घर भर रखा है। इन सबको फेंककर अविनाशी वस्तु नित्यानन्दको ग्रहण करना चाहिये। निर्गुण भगवान् ही सगुणरूपमें आते हैं। अपना संसारी प्रेम अनित्य है, यह सच्ची मित्रता नहीं है। सच्ची मित्रता रत्तीभरकी अच्छी और झूठी रुपयेभरकी भी खराब समझनी चाहिये। संसारमें जो स्वार्थ और रुपयोंके कारण प्रेम है, वह जिस दिन स्वार्थ और धनकी हानि होगी, उसी दिन प्रेमका अन्त हो जायगा, फिर ऐसी मित्रताका मूल्य ही क्या रहा, किन्तु वैर करनेकी अपेक्षा मित्रता ही ठीक है। साधकको राग-द्वेषसे वैराग्य करना अति उत्तम है। सच्चा प्रेम ही परमात्माका स्वरूप है। सच्चा प्रेम होनेपर समझना चाहिये कि परमात्मा मिल गये।

एक तो स्थायी पूँजी होती है और एक रोजगार, उसी प्रकार हम जो नित्य सत्संग करते हैं, यह तो रोजगार है और परमात्माके स्वरूपमें जितनी स्थिति हुई है वह और निष्काम कर्म, भक्ति आदि स्थायी पूँजी है। जैसे लड़केके नाम रुपये जमा करानेपर आप भी वापस लेना चाहें तो नहीं मिल सकते, उसी तरह निष्काम कर्म एवं भक्ति है, उसका फल भी नहीं मिल सकता। हमारेमें जितनी समता और शान्ति है उससे हमारी स्थायी पूँजीका नाप हो सकता है। श्रद्धाकी कमी है, पूर्ण श्रद्धा होते ही दर्शनमें

विलम्ब नहीं हो सकता। श्रद्धाके साथ ही प्रेम है, आगे श्रद्धा चलती है, उसके पीछे प्रेम, प्रेमके पीछे साधन और साधनके पीछे तत्परता, तत्परताके पीछे संयम, संयम होनेपर उपरामता तथा वैराग्य हो जाता है, तत्पश्चात् शान्ति प्राप्त होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

किसी भी विषयमें जितना विश्वास होगा, उतनी ही तत्परता होगी। किसी भी पदार्थका गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य जितना समझमें आ जायगा, उतनी ही उसमें श्रद्धा होगी। रहस्य और तत्त्व ये दोनों जिसमें श्रद्धा बढ़ानी होगी उसमें बढ़ा देंगे और हटानेकी बातोंमें हटा देंगे।

❑ ❑

नीति और साधुता

यह बात तो ठीक ही है कि सब देवताओंको किया हुआ नमस्कार परमात्माको ही प्राप्त होता है, किन्तु यह अविधिपूर्वक है। उनको परमात्मा मानकर प्रणाम करना विधिपूर्वक है।

यदि कोई जीव हमें काटे, ऐसी अवस्थामें उसे मारनेमें विशेष पाप नहीं होता, किन्तु वे पशु हैं, अज्ञानी हैं, इसलिये उनका अपराध क्षमा करना चाहिये। वास्तवमें तो हमें दण्ड देनेका अधिकार है ही नहीं। यदि कोई हमें बिना कारण ही कष्ट पहुँचाता है, उसको मारना नीति है, धर्म नहीं, यदि न मारे तो साधुता ही है। बिच्छूने काटा तो उसे मारनेकी अपेक्षा उसका डंक काटना ठीक रहेगा, उसमें कोई पाप नहीं है। यदि वह न काटे तो डंक भी नहीं काटना चाहिये और काटा है तो उसे मारनेमें थोड़ा पाप लगता है। डंक काट लेनेमें नीति है और वैसे ही छोड़ देना साधुताका व्यवहार है।

हम सभी लोगोंका यहाँसे जल्दी जानेका विचार है, इसलिये जाते समय सब बातें समझ लें तो ठीक है। घरमें कोई बीमार है तो उसकी सेवाके लिये सतत चेष्टा करनी चाहिये और यदि मर जाय तो चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह वापस तो आ नहीं सकता।

अपने घरमें जितने भी व्यक्ति हैं, सबके साथमें समताका व्यवहार करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, कोई नौकर भी घरमें भोजन करे तो उसको भी समानभावसे भोजन कराना चाहिये। यह दोष अधिकतर स्त्रियोंमें रहता है उसे निकालना चाहिये। व्यवहारकी बात तो पशु भी समझ जाता है कि यह मुझसे कैसा

प्रवचन—दिनांक १६-६-१९३६, मंगलवार, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

व्यवहार करता है। समताका व्यवहार करनेसे सभी प्रसन्न होंगे। विषमताका व्यवहार ऐसा करना चाहिये जिससे परमेश्वरकी प्राप्ति हो। वह विषमता कैसी है? घरमें कोई मेहनतका काम हो तो स्वयं अधिक करे और दूसरोंको थोड़ा-थोड़ा दे। पहनने, ओढ़ने एवं ऐश-आरामकी सामग्री दूसरोंको पहले दे और अधिक दे तथा स्वयं पीछे ले और कम ले। ऐसा विषमताका व्यवहार कल्याणका मार्ग है, यही यज्ञ है। यदि घरमें अच्छी-अच्छी पाँच चीज बनी हैं तो पहले सबको अच्छी चीजें परोसे, अन्तमें जो बच जाय या कम खानेको मिले तो उससे बड़ा पुण्य मिलता है और यदि भूखे रह गये तो एकादशीके उपवाससे भी कई गुना अधिक फल मिलता है।

घरमें किसी व्यक्तिविशेषके द्वारा यज्ञ करानेपर उसका फल घरके सब लोगोंको बराबर ही मिलेगा, सकामभावसे हो या निष्कामभावसे। घरमें जो बड़ा है उसीके हाथसे काम कराना उत्तम रहता है। दान-पुण्यका काम घरमें पुरुषोंके हाथमें ही रहना चाहिये, क्योंकि स्त्रियोंमें बुद्धि कम रहती है, यदि उन्होंने कुपात्रको दान दे दिया तो पाप भी हो सकता है। त्यागी ब्राह्मणोंको दान देना उत्तम है, यदि वे अपने उपयोगमें लावें तो अति उत्तम है और वे दूसरेको भी देंगे तो अच्छे कार्यमें ही लगायेंगे।

यह समझनेकी बात है कि घरमें कोई संकट आवे तो अपने ऊपर लेना चाहिये। जैसे राक्षस बकके यहाँ जानेके लिये उस ब्राह्मणके घरमें सब कहते थे कि मैं जाऊँगा, ऐसी अवस्थामें दूसरा ही गया। माता कुन्तीने भीमसेनको भेज दिया, उससे सारे नगरका लाभ ही हुआ। ऐसे समताके बर्तावसे तुरन्त ही प्रत्यक्ष फल हुआ। कोई-सा भी भाव हो समता, प्रेम, दया यह सब हृदयसे होना चाहिये, दिखावामात्र नहीं।

शास्त्रोंकी कथाओंमें जो रहस्य भरा है वह समझना चाहिये। इस प्रकारसे नीतिका, धर्मका, न्यायका बर्ताव करना चाहिये। अन्यायीका नाश हो ही जाता है। पाँचों पाण्डव बड़े धर्मात्मा थे, उनकी स्त्री द्रौपदी एवं माता कुन्ती थी। जिस समय कौरवोंने सभाके बीचमें द्रौपदीको नग्न करना चाहा, उस समय पाण्डवोंने तो न्याय एवं साधुताका व्यवहार किया, इसलिये उनके रक्षक भगवान् हुए। इसमें द्रौपदीका आर्तभाव भी कारण था। जब पाण्डवोंको वनवासमें जाना पड़ा, तब माता कुन्ती विदुरके घर रहीं। उनके तेरह वर्ष बाद लौटकर आनेपर भी कौरवोंने कुछ भी राज्य नहीं दिया एवं अन्यायका बर्ताव किया, उसका फल यह हुआ कि दुर्योधन अपने सारे भाइयोंसहित मारा गया। पाण्डव राजा हुए। द्रौपदी रानी हुई एवं कुन्ती राजमाता हुई। तब भी माता कुन्तीने अपने जेठ जेठानीके साथ कैसा अच्छा बर्ताव किया। बहुत दिनोंतक तो धृतराष्ट्र घरमें ही रहे। तत्पश्चात् तपस्या करनेके लिये वे वनमें गये, तब माता कुन्ती सारा राजसुख छोड़ अपने जेठ और जेठानीकी सेवा करनेके लिये उनके साथ गयीं। उन्होंने उनके पूर्वमें किये हुए खराब बर्तावको एकदम भुला दिया। ऐसा विचार सभी स्त्रियोंको रखना चाहिये। तभी तीर्थ आना सफल हुआ समझना चाहिये।

दूसरेका अपने साथ जो खराब बर्ताव हुआ है, उसको भुला देना चाहिये। जो सभी भूतोंमें निर्वैर है, वह मुझको प्राप्त होता है—ऐसा भगवान्‌ने गीतामें कहा है।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

जो दूसरोंको कष्ट देता है, वह परमात्माको ही कष्ट देता है। यदि मरते समय एकसे भी वैर रह गया तो वह चौरासी लाख

योनियोंमें अपने कर्मानुसार भुगतना पड़ेगा। जैसे एक आदमी एक महात्माका पूर्ण रीतिसे पूजन करता है। सारे शरीरमें चन्दन लगाता है, हर रोज सेवा करता है। हर रोज पैर पड़ता है और साथ ही उनकी एक अंगुलीमें आग लगाता है, उनके पूछनेपर उत्तर देता है कि मैं सारे शरीरका तो पूजन करता हूँ, यदि एक अंगुलीमें आग भी लगा दी तो क्या हुआ, किन्तु उन्हें तो कष्ट ही हुआ। उसका प्रभु कैसे उद्धार कर सकते हैं।

किसीको कष्ट दिया है तो उसका फल हमें तबतक भोगना पड़ेगा, जबतक वह प्रसन्न न हो जाय। एक समय राजा अम्बरीषने द्वादशीके दिन दुर्वासा मुनिको निमन्त्रण दिया, किन्तु मुनिको आनेमें विलम्ब हो गया, राजाका द्वादशीमें ही पारण करनेका नियम था तथा द्वादशीका समय पूरा होनेवाला था एवं राजाके भोजन न करनेसे प्रजा भी भूखी बैठी थी। राजाके गुरुजीने कहा कि तुलसीदल ले लो, इससे पारण भी हो जायगा एवं सब प्रजा भोजन कर लेगी। राजाने वैसा ही किया। दुर्वासा मुनि आये, नाराज हुए। उन्होंने राजाको मारनेके लिये कृत्या पैदा की। सुदर्शनचक्रको यह सहन नहीं हुआ। चक्रने कृत्याका वध किया तथा दुर्वासा मुनिके पीछे लग गया। मुनि शिव, ब्रह्मा, इन्द्र सबके पास गये, किसीने रक्षा नहीं की। फिर विष्णु भगवान्‌के पास गये। भगवान्‌ने कहा तुम अम्बरीषको प्रसन्न कर लो तो पीछा छूट सकता है। मुनि राजा अम्बरीषके पास गये। सुदर्शनने पीछा छोड़ दिया। भगवान् कहते हैं, मेरे भक्तका जो अपराध करेगा, उसको क्षमा करना मेरे अधिकारकी बात नहीं है।

जो अपने साथ भलाईका बर्ताव करता है उसके साथ तो सभी भलाईका व्यवहार करते हैं, किन्तु बुराईका व्यवहार करने-वालेके साथ भी भलाईका व्यवहार करना साधुताका काम है।

राजा युधिष्ठिरको उनके सत्यके लिये याद किया जाता है। युधिष्ठिरजी बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने चित्रसेन गन्धर्व नामक अपने मित्रसे लड़ाई करके अपने शत्रुओंको बचाया। जब चित्रसेनको अर्जुन पकड़कर लाये, तब युधिष्ठिरजीने पूछा कि मेरे भाइयोंको छोड़ दिया क्या? तबतक उसने छोड़ा नहीं था, जब उसने छोड़ दिया, तब उससे बातचीत की। इस समय दुर्योधन बड़ा लज्जित हुआ। फिर भी उसने उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया। उसका फल यही हुआ कि दुर्योधन सकुटुम्ब नष्ट हो गया। राजा युधिष्ठिरका नाम अमर हो गया। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर किसीसे भी वैर नहीं करना चाहिये।

एकादशीसे भी बढ़कर यह बात है कि यदि मौकेसे दो मेहमान घरपर आ गये तो उनको प्रेमपूर्वक समभावसे भोजन करानेपर स्वयंको यदि भूखा रहना पड़े तो उसका फल बारह महीनोंकी एकादशीके उपवासके बराबर होता है, घरमें कोई कठिन काम आनेपर अपने ऊपर ले। तीसरी बात अच्छी-अच्छी चीजें घरमें दूसरोंको दे और आप कम ले। चौथी बात दूसरोंकी बुरी बात, बुरा व्यवहार भूलकर उनकी सेवा करना ही अपना धर्म समझे और किसीसे वैर नहीं करे। घरमें कोई नाराज हो, गाली दे तो भी स्वयं कुछ न बोले और प्रसन्न ही रहे।

अतिथि उसे कहते हैं जिसका कोई जान-पहचानका न हो। जो व्यवहार आदिके लिये आते हैं वे आधे तो मित्र हैं और आधे अतिथि हैं। उनका भी अतिथिके समान सत्कार करना चाहिये। जहाँ स्वार्थकी सिद्धि है, वहाँ कर्तव्य है।

❑ ❑

श्रद्धाकी महिमा

पूर्ण श्रद्धा होनेपर भगवान् मिलनेमें विलम्ब नहीं करते, यदि थोड़ी कमी भी रह जाय तो भी मिल सकते हैं। उनके मिलनेमें प्रेम और करुणभावकी अत्यन्त आवश्यकता है। भगवान्‌में प्रेम करनेके उद्देश्यसे पहले सबसे प्रेम करे। सबसे प्रेम करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। भगवान्‌के सभी नाम बराबर प्रेम बढ़ानेवाले हैं, परन्तु जिसकी जिस नाममें श्रद्धा हो, उसका उसीसे अधिक प्रेम बढ़ सकता है। करुणभाव हो जानेपर तो क्षणभरमें भगवान् दर्शन दे सकते हैं। क्षणभरमें सारे पाप नष्ट कर वे प्रकट हो जाते हैं, ईश्वरके सिवाय हमारा कोई है ही नहीं। समय बीतनेपर कुत्तेकी मौत मारा जाऊँगा—ऐसा सोचनेसे करुणभाव बढ़ सकता है। परमेश्वरके यहाँ हरेक जीवके हरेक पलका हिसाब है।

सत्संग, भजन, ध्यान तो भगवान्‌की स्मृति बनी रहनेके लिये असाधारण उपाय है ही, किन्तु उनके साथ-साथ समयकी अमूल्यता सोचते हुए नाम-जप करता रहे। पूर्ण स्मृति बनी रहनेके लिये कम-से-कम एक लाख नामका जप नित्यप्रति करता रहे तथा मृत्यु निकट है ऐसा भी सोचता रहे। इन दो बातोंको भूलना ही नहीं चाहिये—

दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायण एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

एक आदमी काशीमें रहता है, उसे यह बात मरते समय मालूम हो जाय कि काशीजीमें मरनेसे मुक्ति होती है तो यह बात बहुत उत्तम है। उसकी मुक्ति हो ही जायगी, किन्तु कुछ वर्ष

प्रवचन—दिनांक १६-६-१९३६, मंगलवार, रात्रि, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

पहले मालूम होनेसे उसके साधनमें ढीलापन आ सकता है, वह भजन-ध्यान छोड़ सकता है। उसी बातसे उसे हानि भी हो सकती है। जो बात अन्तसमयमें माननेयोग्य है, वह बात पहले मान ली जाय तो हानि हो सकती है। परमात्माने यह तो एक प्रकारसे छूट दे रखी है, उसकी ओर तो खयाल ही नहीं करना चाहिये। इस समय तो हमें प्रयत्न करना चाहिये। छूटकी नीयत अच्छी नहीं है। वह तो कमजोर आदमियोंकी बातें हैं। प्रेमके बराबर शरणागति नहीं है। ईश्वर सबको समानभावसे सहायता पहुँचाते हैं, किन्तु सहायता माँगनेपर विशेष सहायता भी मिल सकती है।

अग्नि देवताकी उपासना करनेसे वह कल्याण भी कर सकते हैं। स्वाभाविक फल तो छूनेमात्रसे मालूम पड़ सकता है। पैरपर पड़ गया जला देते हैं, हटा लेनेपर जितना जल गया सो जल गया, बाकी बचा सो रह गया। उसी प्रकार भगवन्नाममें भी वही बात है। जबतक भगवान्का नाम लेते रहोगे, तबतक पाप जलते रहेंगे, लेना छोड़नेपर पाप जलने बन्द हो जायँगे।

श्रद्धा-विश्वाससे श्रीकृष्ण भगवान्को एक ही प्रणाम करनेसे दस अश्वमेध यज्ञका फल होता है।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

भगवान् श्रीकृष्णके लिये किया गया एक बारका भी प्रणाम दस अश्वमेधयज्ञके अनुष्ठानकी समाप्तिपर किये जानेवाले अवभृथस्नानके बराबर फलप्रद है। सच पूछा जाय तो एक बार किया गया यह प्रणाम दस अश्वमेधयज्ञसे भी बढ़कर होता है;

क्योंकि दस अश्वमेध करनेवाला व्यक्ति फिरसे जन्म ग्रहण करता है, किंतु भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला फिर जन्म ग्रहण नहीं करता अर्थात् मुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार गंगाजीमें साधारण फल तो सभीको मिलता ही है, किन्तु श्रद्धा-विश्वासवालेको अधिक फल मिलता है। भगवान्‌के भक्तोंकी यह विशेषता है कि वह नहीं चाहने-वालोंको भी चाहने लग जाते हैं, किन्तु भगवान् चाहनेवालोंको ही चाहते हैं।

भगवत्प्राप्तिवाले पुरुष दूसरेको भी भगवत्प्राप्ति करा सकते हैं, किन्तु उनके अन्तःकरणमें यह भावना नहीं आनी चाहिये कि मैं भगवद्दर्शन करा सकता हूँ।

जब-जब संसारमें धर्मकी हानि और पापकी वृद्धि होती है तब-तब देवतालोग भगवान्‌से अवतार लेनेकी प्रार्थना करते हैं। यदि अवतार लेनेका समय नहीं होता है तो भगवान् अपनी शक्ति देकर दूसरे जीवको भेज देते हैं।

❑ ❑

स्मृतिकी महिमा

एकान्तमें भजन-ध्यान करते समय आलस्य नहीं आना चाहिये। उत्तम कार्य भजन-सत्संग आदिमें आलस्य और विक्षेप बड़े बाधक हैं।

ध्यानमें आसन प्रधान चीज है, गीतामें जहाँ ध्यानका विषय आया है, वहाँ आसनके विषयमें चर्चा हुई है। इस प्रकार बैठना चाहिये ताकि किसीका स्पर्श न हो। संकल्प साक्षात् नरक है। अन्तसमयमें यदि कुछ भी संकल्प रह जायगा तो पीछे बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी। आगमें कूदनेसे जो मृत्यु होती है, उससे भी अधिक खराब मृत्यु संकल्प रहते हुए होना है। भगवान् इसीलिये कहते हैं कि हर समय मेरा स्मरण रख, मैं सुगमतासे प्राप्त हो सकूँगा। विश्वास कम होनेसे संसारका चिन्तन होता है। विश्वास होनेपर सारे पाप नष्ट होकर भगवत्-चिन्तनमें मन लग जाता है।

संसारमें जितना परिश्रम सेवा, दान, पुण्यमें किया है, वह सब थोड़ा-सा संकल्प रहनेसे भी व्यर्थ हो जाता है।

भगवान्‌का ध्यान प्रधानरूपसे सदा करता रहे तो अन्त-समयमें भगवान्‌का स्मरण हो जायगा। जो कल्याण करनेवाली वस्तु है, उसको छोड़ना साक्षात् फाँसी लगकर मरना ही है। चिंतन ही ध्यानरूपमें आकर प्राप्त होता है। कुछ भी हो जाय ध्यान न छोड़े। यही जीवन है, यही प्राण है। निरन्तर चिन्तन करनेवालेके लिये परमात्माकी प्राप्ति अत्यन्त सुलभ है। जो मनुष्य इस प्रकार चिन्तन करता है, उसको अन्तसमयमें भगवान् अवश्य याद आयेंगे।

विश्वास करना चाहिये। विश्वास एक बड़ी चीज है। विश्वास पक्का हो गया कि आज भगवान् आयेंगे तो उनको आना ही पड़ेगा।

मनुष्य सोच ले कि मरनेपर चौरासी लाख योनियोंमें घूमनेपर भी किसी प्रकारसे कल्याण होनेका उपाय नहीं है, अन्य योनियोंमें

प्रवचन—दिनांक १३-६-१९३६, बुधवार, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

उद्धार नहीं हो सकता। यह पूर्ण रीतिसे समझमें आनेपर मनुष्य साधनमें तत्परतासे लग सकता है, जितना भी मकान, रुपया, घर, कुटुम्ब है, कुछ भी साथ नहीं जायगा।

ऐसा पूर्ण विश्वास होनेपर मनुष्यसे कल्याणके लिये बड़ी तत्परता हो सकती है। इसलिये ऐसा सोचकर साधनमें संलग्न हो जाना चाहिये। उसका सहज ही कल्याण हो सकता है। जिस कार्यसे परमात्मा मिलें, उसीमें अपना धन लगावे। उसी कार्यमें अपने मित्रसे, स्त्रीसे, पुत्रसे, सभीसे सहायता ले, यदि वे सहायता न दें तो बाधा भी न देवें यही प्रार्थना करे।

कल्याणके लिये सबसे बढ़कर दो ही उपाय हैं। एक तो प्रभुकी अनन्य शरण होकर, उनके स्वरूपको याद रखना है। दूसरे संसारके सारे जीवोंकी सेवा करना, सभी जीवोंका उपकार करना है। ध्यान और सेवा ये दो कार्य हैं। दोनों हों तो और उत्तम है। ध्यान नहीं कर सके तो सेवा करनी चाहिये। सेवा न कर सके तो ध्यान करना चाहिये। ध्यान करना पहले नम्बरपर है, सेवा पीछे है। ध्यानसे निश्चिन्त होनेपर सेवा और सेवाके बाद ध्यान करे, किन्तु प्रभुकी स्मृति तो कभी छोड़े ही नहीं। मृत्युको उत्तम समझकर अपना लें परन्तु स्मृति न छूटे।

शास्त्रोंमें जो परमेश्वरके बारेमें बताया गया है, उनका नाम और रूप तुम अपनी इच्छानुसार पकड़ सकते हो। श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये। खम्भेमेंसे भी भगवान् प्रकट हुए थे। मार्कण्डेय मुनिने प्रभु शंकरजीकी प्रतिमाको पकड़ लिया तो उनका यमराज कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। यह विश्वासकी बात है। नाम एवं स्वरूप कोई भी हो विश्वास होना चाहिये। यदि साकारमें प्रेम न हो तो ज्ञानद्वारा निराकार चिन्मय आनन्दका ध्यान करे। आनन्द ही भगवान् हैं। शास्त्रोंका तो कहना है श्रद्धा-विश्वाससे किसीमें भी परमात्माकी

भावना करनेसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है। इसीलिये संसारकी सारी वस्तुओंमें भगवद्भाव ही रखना चाहिये।

किसी भी तरह ध्यान करो, ध्यान ही अपना लक्ष्य बना लो। भगवान् कहते हैं सब भूतोंमें जो बीज है, चेतन है, वह मैं ही हूँ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥

(गीता ७।१०)

हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ।

सारा ब्रह्माण्ड मेरे एक अंशमें स्थित है। ऐसे भगवान्‌का ध्यान करना कोई कठिन काम नहीं है। जितने नाम भगवान्‌के हैं, उनके अलावा अलग नाममें भी उनकी भावना करके श्रद्धा करनेसे वह प्राप्त हो सकते हैं। ध्यान किसीका भी करो, साकार, निराकार, राम, कृष्ण सभी एक ही हैं। जिसका जिसमें श्रद्धा-विश्वास है उसीको सर्वोच्च समझे, उसीमें महत्त्व बुद्धि रखे, उसे उसीसे शीघ्र साक्षात्कार हो सकता है। आग और मृत्युमें भी ईश्वरकी भावना होनेसे मुक्ति हो सकती है।

परमात्माका स्वरूप दिव्य है, उनके शरीरकी धातु दिव्य है, भगवान्‌के शरीरकी छाया नहीं पड़ती। उनके शरीरमें रोग नहीं होता, वे स्वयं प्रकट होते हैं। उनके शरीरको छूनेसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। परमात्मा सुन्दरतामें कामदेवसे बढ़कर हैं, उनमें अत्यन्त कोमलता है। पीताम्बर पहने हुए हैं, पीताम्बरमेंसे उनके शरीरकी चमक आ रही है। चार भुजाएं हैं, भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। प्रभु मन्द-मन्द हँस रहे हैं, नेत्रोंमें प्रत्यक्ष समता प्रकट हो रही है, काले केश हैं, सिरपर अति सुन्दर मुकुट शोभायमान है प्रभुके अंग बड़े ही आनन्द और शान्तिदायक हैं।

❑ ❑

गीताकी महिमा

जैसे समुद्रमें गोता मारनेपर चारों तरफ पानी-ही-पानी रहता है, और हम पानीमें ही डूबे रहते हैं उसी प्रकार आनन्दमें डूबे रहना चाहिये। उस आनन्दकी सीमा नहीं है। जैसे-जैसे भावनाकी प्रगाढ़ता होती है, वैसे-वैसे ही आनन्दकी सीमा बढ़ती जाती है। वही ज्ञानस्वरूप है, वही चेतनस्वरूप है, वही परमात्मा है, जब आनन्दमें डूबनेपर शरीर ही नहीं रहता है, तब संसार कहाँ रहेगा? आनन्दको जाननेवाला ही आनन्द है, आनन्द ही आनन्द है, शान्त आनन्द, चेतन आनन्द, अपार आनन्द सब तरफ मालूम पड़ता है। ऐसा भाव प्रभुकी कृपासे ही प्राप्त होता है।

प्रभुकी दयाका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। समुद्रके जलका अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु प्रभुकी कृपाका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। प्रभुकी दया असीम है, पूतना राक्षसी जो कि भगवान्‌को विष देनेके लिये आयी थी, उसको भी भगवान्‌ने विषके बदलेमें मुक्ति दी। भगवान्‌की कितनी दया है।

गोपीचन्दकी माँ अपने पुत्रसे कहती है—

चार दिननकी चाँदनी फेर अँधेरी रात।

माताकी शिक्षासे गोपीचन्द भजनमें लग गये और संन्यास ले लिया।

हमलोगोंके जानेका समय निकट आ गया है, इसलिये तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌के प्रकट होनेमें एक क्षण भी नहीं लगता। आँखके झपकनेमें देर लगती है, किन्तु उनके

प्रवचन—दिनांक १७-६-१९३६, बुधवार, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

प्रकट होनेमें देर नहीं लगती, केवल विश्वास होनेकी आवश्यकता है। भगवान् तो गले पड़कर प्रकट होना चाहते हैं, उनके समान दयालु कौन हो सकता है।

भगवान् अर्जुनके सम्मुख प्रकट हुए और बोले कि मेरे तत्त्वको जो जान जाता है, उसके उद्धारमें किसी प्रकारकी भी शंका नहीं है। जिनके राग, द्वेष, भय, क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसे बहुत-से पुरुष मुझे प्राप्त हो चुके हैं।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

(गीता ४।१०)

पहले भी, जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्यप्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं।

इन श्लोकोंमें भगवान्‌की दया, प्रेम और नीति भरी हुई है तथा निष्कामकर्मका उपदेश भी है। सारी गीता ज्ञान, योग एवं भक्तिका सागर है। गीताके महत्त्वके सामने रत्न तो कंकर, पत्थरसे भी तुच्छ हैं। गीता गंगासे बढ़कर है। गीता भगवान्‌के मुखारविन्दसे उत्पन्न हुई है और गंगा भगवान्‌के चरणोंसे उत्पन्न हुई है। गंगाजीमें स्नान करनेसे ही मनुष्य पवित्र होते हैं, किन्तु गीता तो घर-घर पहुँचकर कल्याण करती है। गीता ज्ञान और भक्तिसे परिपूर्ण है। गीताकी संस्कृत बड़ी सरल और मधुर है। उसमें किसीकी भी निन्दा नहीं है। उसके एक श्लोकको भी धारण करनेसे बेड़ा पार है। गीताकी महिमा अद्‌भुत है।

जिस देशमें महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजीने अवतार लिया, जहाँ

उनके चित्र उपलब्ध हैं, जहाँ उनकी कृपा बह रही है, वहाँसे हमलोग खाली हाथ जायँ तो हमलोगोंकी कितनी मूर्खता है।

वृन्दावनमें उनकी मधुर वंशीकी धुन सुनकर पशु-पक्षीतक बेसुध हो जाते थे। विचार करनेसे हमलोग पशु-पक्षीसे भी गये-बीते हैं। एक मनुष्य अमेरिका गया, वहाँ रहनेवालोंने उससे पूछा कि तुम गीता पढ़े हो? तब उसने कहा कि मैंने नहीं पढ़ा। तब वहाँके लोगोंने उसे धिक्कार दिया और कहा कि जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजीने अवतार लेकर गीता सुनायी है, आप उस देशके वासी हैं, आपने इतना पढ़ा-लिखा, किन्तु गीताका अनुभव नहीं किया, यह कितनी बड़ी मूर्खता है। फिर उसने आकर गीता पढ़ी। वे सज्जन मेरे एक मित्रको यात्रामें गीता पढ़ते हुए मिले थे। वार्तालापमें उन्होंने यह बात बतायी।

चलते, उठते, बैठते सभी समय गीताका स्मरण रखना चाहिये, गीताके अनुसार ही सारे कर्तव्य करने चाहिये। गीता भगवान्‌का हृदय है। मरते समय गीताकी पुस्तक मस्तकपर रख दी जाय तो भी कल्याण हो जाता है, फिर उसको अर्थसहित याद रखनेवाला तो महात्मा ही हो सकता है।

प्रभुके नाम, गुण, स्वरूपकी महिमा अपार है। जो आदमी कहता है कि मेरा ध्यान नहीं लगता तो समझना चाहिये वह ध्यानके लिये प्रयत्न ही नहीं करता। जब हमारा ध्यान सांसारिक चित्र देखनेमें लग सकता है, लग जाता है, तब फिर भगवान्‌के चित्रमें ध्यान लगाना कौन-सी बड़ी बात है। विश्वास होनेपर भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन होना एकदम सरल है।

रामका नाम लेनेसे राम याद आ ही जाना चाहिये। उनका स्वरूप इतना मोहित करनेवाला है, उनके दर्शनमें इतना आनन्द आता है कि शरीरको काट डालनेपर भी मालूम नहीं पड़ता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६।२२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

हमलोग नकली कीर्तन करते हैं, उसमें भी कितना आनन्द आता है। प्रभुका नाम कृष्ण है, 'कृष'=आकर्षणका द्योतक है और 'ण' आनन्दका द्योतक है। इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर भगवान्‌के नामका उच्चारण करे और आनन्दमें पागलकी तरह मग्न हो जाय, फिर उस समयका तो कहना ही क्या है।

हमलोग भगवान्‌को ढूँढ़ रहे हैं, किन्तु वे तो यहीं हैं। उनको देखनेके लिये कई रास्ते हैं। सर्वोत्तम तो यही है कि जहाँ हमारे नेत्र जायँ, वहीं-वहीं परमात्माका स्वरूप ही देखें। सारे संसारको आप अपना बना लें और उसमें भगवान्‌का ही चेहरा देखें। गोपियाँ पत्ते-पत्तेपर भगवान्‌का रूप देखती थीं। आँखके सामने भगवान्‌की मूर्ति बाँध लें। भगवान्‌को साकाररूपमें इस तरह देखना चाहिये कि पत्ते-पत्तेपर प्रभुकी मूर्ति दीखे।

एक व्यक्ति भगवान्‌की भक्ति करता था। वह नित्यप्रति बगीचेसे फूल ले जाकर भगवान्‌की प्रतिमापर चढ़ाता था। जब उसे पूर्ण विश्वास हुआ तो प्रभुकी साक्षात् मूर्ति हर जगह दीखने लगी। जब वह फूल तोड़ने गया तो जिस वृक्षके पास जाता, उसी वृक्षपर जो फूल होते, वे भगवान्‌के मस्तकपर ही चढ़े दीखते। क्या ही आनन्दमयी अवस्था है। ऐसे ही विश्वास कर प्रभुको सर्वत्र देखनेका अनुभव करे। सारा ब्रह्माण्ड भगवान्‌के एक अंशमें स्थित है।

ज्ञानके मार्गसे देखनेपर सारा ब्रह्माण्ड आनन्दसे भरा पड़ा है। जैसे बर्फमें जल-ही-जल भरा है। तत्त्वज्ञ जिधर भी देखता है, उधर उसे आनन्द-ही-आनन्द दीखता है। जैसे चन्द्रमा और चाँदनी एक ही है। पानी और बर्फ एक ही है। उसी तरह भगवान् भी साकार-निराकार एक ही हैं। जैसे पानी बर्फरूपमें साकार हो जाता है, वैसे ही भगवान् भी निराकारसे साकार हो जाते हैं। इसमें कोई शंकाकी बात नहीं है। जैसे आनन्दका उच्चारण करनेसे प्रत्यक्षरूपमें रोमांच होता है। गंधकी बात चले तो सुगन्ध आने लगती है। प्रकाशकी बात चले तो प्रकाश दीखने लग जाता है, वैसे ही प्रकट होनेकी बात चले और भगवान् प्रकट हो जायँ, इसमें कौन-सी बड़ी बात है। विश्वास कर कहना चाहिये कि परमात्मा अभी आते हैं तो वे आ जायँगे। विश्वास करनेकी बात है। देखिये सभामें द्रौपदीको अपमानित किया जा रहा है, उस समय द्रौपदीका विश्वास अटल था, उसकी आर्त पुकारकी भगवान्‌ने कैसी लज्जा रखी। उनके आनेमें क्षणभर भी नहीं लगा। वैसी ही आर्त पुकार हमें भी लगानी चाहिये।

प्रभुकी कितनी कृपा है। लँगड़ा भी पहाड़ लाँघ जाता है, गूँगा भी बोल सकता है, भगवान्‌की दयाका प्रवाह बड़े जोरोंसे बह रहा है, जो जितनी चाहे वह उतनी दया ले सकता है। लेना स्वयंके हाथ है।

भगवान् बिजलीके समान प्रकट हो सकते हैं। पन्द्रह वर्ष बाद महाराज वेदव्यासजीने सम्पूर्ण सेनाका आवाहन करके सबको मिला दिया। वेदव्यासजीमें अलौकिक शक्ति थी। भगवान्‌के प्रकट होनेका यही उपाय है कि सब लोग मिलकर एकदम आर्त पुकार लगायें, तब भगवान् आ सकते हैं। भगवान् जहाँ-जहाँ भी

प्रकट हुए हैं, वहाँ-वहाँ विश्वाससे ही प्रकट हुए हैं। भगवान् अपने भक्तकी बात रखनेके लिये खम्भेमेंसे भी प्रकट हो गये। भगवान् निराकार-रूपसे हर जगह उपस्थित हैं ही। जो आर्त होकर उन्हें पुकारता है, वे उसकी आर्त पुकार सुनकर बिजलीके समान प्रकट हो जाते हैं।

एक गरीब आदमी था। उसका एक साधुमें विश्वास था। वह साधुके पास गया। उसने कहा मुझे धनकी बड़ी आवश्यकता है, मेरे घरपर एक पत्थरकी शिला पड़ी हुई है, वह सोनेकी हो जाय तो मैं धनवान हो जाऊँ। साधुको दया आ गयी, उन्होंने कहा आठ पहरतक शिला सोनेकी हो, शिला सोनेकी हो कहो तो वह सोनेकी हो जायगी। उसको साधुपर विश्वास था, वह आठ पहरतक कहता ही रहा—शिला सोनेकी हो, शिला सोनेकी हो। अन्तमें जब आठ पहरमें थोड़ा-सा समय बाकी रह गया, तब वह घबराकर मनमें विचार करने लगा कि शिला सोनेकी तो नहीं हुई, तब उकताकर वह कहने लगा शिला सोनेकी न हो तो लोहेकी तो हो जा, यह शब्द उसके अन्तिम विश्वासके थे, शिला लोहेकी हो गयी। वैसे ही विश्वास होनेपर भगवान् हरेक रूपमें प्रकट हो सकते हैं। जिस रूपमें विश्वास हो उसी रूपसे प्रकट हो जाते हैं।

रातको जो स्वप्न आता है वह प्रत्यक्ष ही प्रतीत होता है। उस समय कोई शंका नहीं रहती। भगवान् तो हर समय प्रत्यक्ष हैं ही। सिर्फ मायाका पर्दा अपने ऊपर पड़ा हुआ है।

शान्ति, आनन्द ये सब उन्हींके स्वरूप हैं, वह परिपूर्ण है। जितने भी उसके विशेषण हैं, सभी उनमें विद्यमान हैं।

❑ ❑

भगवान्‌की आवश्यकता

जनसमुदायको जल्दी लाभ देनेवाला उपाय भगवान्‌का स्मरण ही है। भगवान्‌का स्मरण निराकारसहित साकारका हो या आनन्दघनका हो, जो जिसके अनुकूल पड़े, उसे उसीके द्वारा भगवत्प्राप्ति हो सकती है। भगवान्‌का निराकारसहित साकारका ध्यान और दुःखियोंकी सेवा करे। सत्संग इनका पोषक भी है और सरल उपाय भी है। जिस किसी प्रकारसे उनका दुःख शीघ्र शान्त हो ऐसा उपाय करना चाहिये। यदि बहुत प्रयास करनेपर भी दुःख न मिटे तो वह उसका प्रारब्ध है। असाध्य रोग दीख पड़नेपर भी सेवा करनी चाहिये। यदि अपयश हो तो भी सेवा करता जाय, क्योंकि वह अपयश किसीपर तो जाता ही, अपने पर ले लेवे। अपयश बहुत अच्छी चीज है।

प्रश्न— अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

इस श्लोकके अनुसार साधन करे तो कितने दिनमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

उत्तर—इस बातका करार न करें। जैसा रोगी हो उतने दिन ही लगेंगे। रोगका भी नियम नहीं है। ज्यादा-से-ज्यादा रोग हो तो भी जल्दी आराम हो सकता है।

प्रवचन—दिनांक १७-६-१९३६, बुधवार, रात्रि, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

भगवान्‌ने समय नहीं बाँधा है, तब मैं कैसे कहूँ कि जल्दी हो जायगा। इसका अर्थ समझनेवाला जैसा समझे वैसा ही है। एक दिनमें मिल जायँगे ऐसा माननेवालेको एक दिनमें मिल सकते हैं। दो दिनमें माने तो दो दिनमें मिल सकते हैं। जैसी अवधि बाँधे, वैसा ही काम हो जाता है। क्षणमें प्राप्तिवाली बात तो आपलोगोंकी सुनी हुई है ही, पर उसमें तो एक प्रकारसे संसारसे मरना पड़ेगा।

भगवान्‌के ध्यानमें तो खूब मुग्ध होकर मर जाय। ऐसा मस्त हो जाय कि फिर पीछे चेत ही न हो। पहलेसे खूब दृढ़ रहनेसे अन्तसमयमें चेत रह सकता है।

भगवान् जैसे समझमें आयें, वैसे ही उनका लगातार चिन्तन रहना चाहिये। कभी चिन्तन करे और कभी न करे यह बात ठीक नहीं है।

ऊँची-से-ऊँची स्थिति हो जाय उसका तो कहना ही क्या है। परमात्माकी साधारण भावना होते हुए भी मरे तो कोई हर्ज नहीं है।

एक नयी बात सुनाता हूँ। '**समलोष्टाश्मकाञ्चनः**' लोष्ट शब्दके दो अर्थ होते हैं। एक मिट्टीका ढ़ेला और दूसरा लोहेका मैल। ये दोनों ही खानसे उत्पन्न होनेवाले हैं। धातुसे दोनों जड़ हैं। केवल मूल्यका अन्तर है। वैसे ही यावन्मात्र पार्थिव वस्तु क्षणभंगुर है। इन चारों वस्तुओंको (मिट्टीका ढ़ेला, लोहेका मैल, पत्थर और सोना) समान आदर देना चाहिये। सोनेको आदर देना मूर्खता है। जिस जगह जिस वस्तुकी कमी होगी, उस जगह उसी वस्तुका मूल्य अधिक होगा। जैसे रामेश्वरमें गंगाजलकी कीमत अधिक है। यहाँ चाहे लाखों घड़ा भर लो। वैसे ही यहाँ सोनेकी कमी है, इसलिये सोनेका मूल्य अधिक है। जिस जगह लोहा

कमती होगा, उस जगह सोनेसे भी ज्यादा कीमत लोहेकी होगी। लोहेकी मानी हुई कीमत है। ज्ञानीकी दृष्टिसे तो एक ही है। एक तरफ सोनेकी ढेरी, एक तरफ पत्थरकी और एक तरफ रत्नोंकी भरी हुई ढेरी है, उसमें क्या अन्तर है। सोना कमानेमें समय बिताना कितनी मूर्खता है। आत्माके कल्याणमें समय बिताना चाहिये। ग्राहक आनेसे ही मूर्खोंने इनके दामोंमें फर्क कर दिया। ये सब तुच्छ और नाशवान् हैं। इनमें क्या पड़ा है, ये तो बाधक ही हैं। यह सब खनिज वस्तु है, नाशवान् है। ये क्या काम आयेगी। एक मोती और रत्नोंकी भरी हुई डिब्बी पड़ी है, कुत्ता उसका क्या करे। उसका पेट तो रोटियोंसे ही भरेगा, इसलिये अपना समय भजन-ध्यानमें बिताओ।

आत्माके कल्याणके लिये परमार्थकी आवश्यकता है। गहने-रुपयोंको धन न समझे, असली धन तो सेवाको समझे। दुःखियोंकी सेवा और ईश्वरकी भक्ति ये दो चीजें कल्याणकारक हैं। अच्छे पुरुषोंकी बातोंमें विश्वास करनेसे ही मनुष्य लाभ उठा सकता है।

घरमें स्त्रियोंको सेवा कार्य इस प्रकार करना चाहिये कि सबका चित्त आकर्षित हो जाय। सुहागिन स्त्रियोंको ईश्वरकी भक्ति और पातिव्रतधर्म तथा विधवाओंके लिये ईश्वरकी भक्ति और वैराग्य प्रधान है। सेवा कार्य तो सबको ही करना चाहिये।

❑ ❑

भगवान्‌की दयालुता

रातको दस बजे सो जाना चाहिये और तीन-चार बजे उठना चाहिये। भगवान्‌की रासलीला विशुद्ध प्रेमकी थी। इस समय तो बड़ी खराब रीतिसे रास होता है। रामलीला भी जो वास्तवमें थी, उसमें भी फेरबदल कर भाव बिगाड़ दिया गया है।

सब चीजें भगवत्स्वरूप ही दीखने लग जायँ, उनसे मिलनेकी इच्छा हो जाय, वृक्ष, पत्थर जो कुछ भी हो, सभी परमात्मा दीखें। जैसे तस्वीरमें आकृति है, उसी तरह ध्यानमें दीखना कोई बड़ी बात नहीं। भगवान् तो सभीके अति प्यारे हैं, फिर उनके याद आनेमें कौन बड़ी बात है। जो दीखता है, वह भगवान्‌का स्वरूप है। ऐसा विश्वास करनेपर भगवान्‌का स्वरूप ही दीखेगा।

ऐसी बातें होनी चाहिये, जिससे भगवान्‌में खूब प्रेम हो, विश्वास हो, श्रद्धा हो। विश्वास होनेपर भगवान् प्रकट हो जायँगे।

हम किसी महात्मासे मिलने जायँ, वह महात्मा मार्गमें मिल जायँ और हम उन्हींसे महात्माकी बात पूछें तो वे तो संकोचमें पड़ जाते हैं, पर साथवाले कह दें कि ये ही महात्मा हैं तो क्षणभरमें हमारा भाव बदल जाता है। इसी प्रकार हमको महात्मा मिल जायँ और उनपर हमारा विश्वास हो जाय और वे भगवान्‌को पहचानते हों और वे हमें दिखा देवें कि ये भगवान् हैं तो हमारा काम सिद्ध हो जाय।

भगवान् बहुत दयालु हैं। उनसे किसीका दुःख देखा नहीं जाता। आतुर होनेके साथ तो उनको प्रकट होना ही पड़ेगा। ये बात जिसके समझमें आ जाय, उसको रोना आ जायगा। रोना नहीं आता है तो उसके विश्वासमें कमी है।

प्रवचन—दिनांक १८-६-१९३६, बृहस्पतिवार, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

भगवान् इतने दयालु हैं, कि वे रुक नहीं सकते। जब हम यह समझ लेंगे तो भगवान् रुक नहीं सकेंगे।

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

भरतजीके शब्दोंमें विश्वास हो जाय कि मेरी करनीकी तरफ देखनेसे दर्शन होनेका नहीं है, किन्तु भगवान्‌की ओर देखनेसे विश्वास हो जाता है। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

(गीता ५। २९)

भगवान्‌को सब भूतोंका सुहृद् जाननेसे ही शान्ति मिल जाती है। भगवान्‌की दयापर विश्वास करे कि वे बड़े दयालु हैं, किसीका दुःख नहीं देख सकते, परन्तु अपनेको भूख तो होनी चाहिये। भूखेके चेहरेसे उसकी भूखका मालूम पड़ जाता है। ऐसी श्रद्धाके लिये प्रभुके आगे रोवे।

भगवान् पहले निराकार-रूपसे आते हैं, तब सारी इन्द्रियोंमें ज्ञान, प्रकाश और आनन्दका संचार हो जाता है। पीछे रोमांच, अश्रुपात, उसके पीछे बिजलीके समान प्रत्यक्ष चमक फिर क्षणभरमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं। रोनेके लिये भरतजीका उदाहरण बहुत अच्छा है।

भरतजीने आते ही मातासे पूछा पिताजी कहाँ हैं? माताने कहा तुम्हारे पिताजी उत्तम गतिको प्राप्त हो गये। पिताजीकी मृत्यु सुनकर दोनों भाई रोने लग गये। मरते समय पिताजीने मुझे रामके हाथ नहीं सौंपा। भरतजीने पूछा पिताजी मरते समय क्या कहे थे? कैकई बोली—पिताजीने हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! ऐसा कहा था। क्या राम उस समय नहीं थे, तब कैकईने सारी बातें कह सुनायी। माताकी बातें सुनकर भरतजी गिर पड़े। जिस रामके आश्रित होकर मैं अपना जीवन बिताना चाहता हूँ, उस

रामके साथ माताने ऐसा व्यवहार किया। जैसे कोई मछलीको जलके बाहर निकालकर जीवित रखना चाहे, उसी तरह रामके वियोगमें मैं कैसे जी सकता हूँ। मछलीके लिये जलका संयोग, मेरे लिये रामका संयोग आवश्यक है। उनको वनमें भेजकर मुझे जीवित देखना चाहती है।

भरतजी माता कौशल्याके पास गये, कहा—जननी! मैं इस बातसे बिलकुल सहमत नहीं हूँ, यदि रामके वन जानेमें मेरी किंचित् भी सलाह हो तो मुझे घोर पाप लगे। कौशल्याजीने बहुत समझाया, अपने कपड़ेसे आंसू पोंछते हुए कहा—राम जाते समय मुझसे कह गये थे कि भरत मेरेसे भी अधिक तुम्हारी सेवा करेंगे। भरतजी रातभर कौशल्याके पास रहे, प्रातःकाल गुरुजी आये। राजाकी आज्ञा सुनाकर राजगद्दीकी बात कही। भरतजीने कहा—मैं इसका अधिकारी नहीं हूँ। हमलोग रघुनाथजीके पास चलें, उनको वापस यहाँ ले आयें। सब लोग तैयार हो गये। भरतजी पैदल चलने लगे, सब लोग पैदल चलने लगे। लोगोंका दुःख देखकर माँ बोलीं—भरत रथपर बैठ जाओ, भरतने कहा—माँ प्रभु पैदल गये हैं तो मेरा कर्तव्य है कि सिरके बल चलूँ, पर चला नहीं जाता। भरतजीका कैसा उत्तम व्यवहार है।

❑ ❑

पतिकी सेवा सर्वोच्च सेवा है

स्त्रियोंके लिये पतिसेवा ही सर्वोच्च सेवा है। पतिके माता-पिताकी भी सेवा पतिके पूज्य मानकर करनी चाहिये। स्त्रीको पतिकी प्रसन्नताके लिये ही गहना-कपड़ा आदि पहनना चाहिये। जिस स्त्रीका मन गहना, कपड़ा, गोटे, किनारीमें रहता है, वह स्त्री महामूर्ख है। अपने किसी कार्यके लिये पतिको कष्ट न दे, कभी गुस्सा न करे, न कभी रूठे, न कभी कड़े वचन बोले। पातिव्रतधर्मके पालनसे सब बातें आ सकती हैं।

एक पतिव्रता स्त्री थी। वह पतिकी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न रहती थी। एक दिन भोजन करने बैठी, तब उसके पतिने आकर थालीमें एक अंजलि धूल डाल दी और हँसने लगा, वह भी हँसने लगी। तब पतिने पूछा तू क्यों हँसती है। तब उसने कहा पता नहीं, आप ही जानें। पतिने कहा मैं तो तेरी थालीमें धूल डालकर हँसता हूँ, तब उसने कहा मैं तो आपको हँसते हुए देखकर हँसती हूँ। मेरी हँसी तो आपकी हँसीमें ही है। ऐसे ही पतिकी प्रसन्नतामें प्रसन्न रहना चाहिये। इसी प्रकार लड़केका भी कर्तव्य है कि अपने माँ, बापके अनुकूल कार्य करे। उनके अनुकूल कार्य करनेसे प्रतिकूल वृत्ति नष्ट हो जाती है। उसके द्वेषभाव नष्ट हो जाते हैं। उसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

संसारमें जितने महात्मा हैं और हो चुके हैं, उनकी यादगिरी भी हम इसीलिये करते हैं कि उन्होंने संसारमें कैसे-कैसे कार्य किये हैं, हम भी वैसा ही बर्ताव करें।

विधवा स्त्रियाँ भजन-ध्यानमें अपना समय बितायें, ब्रह्मचर्यसे रहें, घरमें सबकी सेवा करें। दूसरोंकी आत्माको सुख पहुँचाना

प्रवचन—दिनांक १८-६-१९३६, बृहस्पतिवार, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

ही धर्म है। जिसकी आत्मामें दूसरेका हित वास करता है, उसको संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

हमलोग जल्दी जानेका विचार कर रहे हैं। जहाँ जाओ, वहाँ सबको यहाँ सुनी हुई बातें बतानी चाहिये। जैसे लोग तीर्थोंसे आकर प्रसाद बाँटते हैं, उसी तरहसे यहाँकी सुनी हुई बातोंको उन्हें सुनाना चाहिये, यही असली प्रसाद है। भक्तिकी, सेवाकी बातें ऐसी हैं, जिनको धारण करनेसे परम गति हो जाती है। ऐसी बातोंको ग्रहण करे, इस बातका खूब खयाल रखे कि दूसरोंका भला हो तथा बिगाड़ किसीका न हो।

स्त्रियोंको लुक-छिपकर काम नहीं करना चाहिये, इससे बहुत पतन होता है। घरमें छिपाकर कोई दान न दे। पहनने-ओढ़नेके लिये छिपाकर कोई चीज न मँगाये। यह आत्माको कलंक लगानेवाला है और पतन करानेवाला है। कोई भी चीज चाहिये, वह अपने पतिसे मँगानी चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये। जैसे थर्ड क्लासकी टिकट ली और बैठे इण्टर, सेकेण्ड या फर्स्ट क्लासमें, न पहुँचनेतक मनमें धड़कन रहती है, यह नहीं करना चाहिये। इससे आत्माका पतन है। मालूम पड़नेपर इस लोकमें दुर्दशा होती है, परलोकमें तो है ही। इसलिये चोरीका काम कभी नहीं करना चाहिये। शरीरको हर समय पवित्र रखे। शौच करनेके बाद जल-मिट्टीसे खूब साफ करना चाहिये। घरको साफ रखना चाहिये।

सत्य कमाईका पैसा अर्जित करना चाहिये, उसीसे बुद्धि शुद्ध होती है। हमलोगोंको न्यायसे पैसा कमाकर निर्वाह करना चाहिये।

स्त्रियोंको चाहिये कि घर स्वच्छ रखें, सबसे प्रेम रखें। हृदय,

शरीर, व्यवहार सब साफ रखें। हृदयके काम, क्रोध, लोभ निकालकर खूब स्वच्छता रखें। सबसे प्रेमसे बातचीत करें। कोई गुस्सा भी करे उससे प्रेमसे बोलें तो उसका गुस्सा भी शान्त हो जाय। हँसकर बोलें, ऐसे प्रसन्नचित्त रहनेवाली स्त्रीके दोनों कुल तर जाते हैं। भजन-ध्यान करे। प्यारे वचन बोले। मनको पवित्र बनावे। छल, कपटसे दूर रहे। उत्तम-उत्तम भाव करे। समता-सन्तोष रखे, अपना पति जो दे उसीमें सन्तोष रखे, उसीमें आनन्द माने। जैसे हमलोग ठाकुरजीके प्रसादको थोड़ा ही लेते हैं वैसे ही सास चीज देवे तो थोड़ी लेवे, इस प्रसादीको गाँव और घरमें बाँटे तो सबका कल्याण हो। निष्कामभावसे जो इस प्रकार काम करता है उसका कल्याण हो जाता है।

❑ ❑

अन्याय कभी न करें

परमात्माकी प्राप्ति होनेपर सभी कमी पूरी हो जाती है। व्यापारमें हमारी कमजोरीके कारण ही झूठ-कपट नहीं छूटता। सत्तासे ही पैसोंको पकड़ रखा है। धनमें सत्ताकी इतनी प्रगाढ़ता है कि मैं मरूँगा पर तुझको नहीं छोड़ूँगा।

धनकी सत्ता साधनसे कम हो सकती है। ऊँची स्थितिके पुरुष हैं, उनकी धनकी सत्ता बहुत कम हो जाती है। तत्त्व समझनेपर तो कुछ सत्ता ही नहीं रहती।

जिस तरह बच्चे ठीकरियोंके लिये लड़ते हैं और हमलोग हँसते हैं, क्योंकि हमलोग ठीकरियोंका तत्त्व समझते हैं। उसी तरह महात्मालोग हमलोगोंके धन और मकानकी लड़ाईको देखकर हँसते हैं।

हमलोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, हमे परस्पर चर्चा करनेसे जो ज्ञान हुआ है, उन बातोंको घरपर जाकर कटिबद्ध होकर काममें लाना चाहिये। तत्पर होकर साधन करेंगे तो बहुत जल्दी भगवत्प्राप्ति हो सकेगी।

भारी-से-भारी आपत्तियाँ आवें तो उनका खूब सामना करना चाहिये। जैसे कर्मयोगकी बात सुनी, उसमें कोई दोष आवे तो उसे निकाल देना चाहिये तथा माता, पिता-भाई आदि पाप करनेको कहें तो सुनना ही नहीं चाहिये। अपना स्वच्छ-साफ व्यवहार करना चाहिये। लोभ आवे तो उसकी भी नहीं सुने, भक्तिके विरुद्ध बड़ोंकी आज्ञा भी नहीं माननी चाहिये। बड़े लोग चोरी, पाप, झूठ, कपट, अन्याय करनेको कहें तो उनकी बात भी नहीं माननी चाहिये। काम, क्रोध, लोभ आदिको एकदम

प्रवचन—दिनांक १८-६-१९३६, बृहस्पतिवार, रात्रि, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

दबा दे। इन सारी बातोंके लिये बड़ा शूरवीर बननेकी आवश्यकता है। काम, क्रोध, लोभ धर्ममें बाधक हैं। इनको एकदम निकाल दे। धर्मके लिये मरनेमें जरा भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

घरवाले कहें तो भी अन्यायका व्यवहार नहीं करना चाहिये। इसके लिये अलग भले ही हो जाओ। संसारमें लोग अलग होते आये ही हैं।

अपने तो ऐसा काम करना है कि एक सालमें ही भगवत्प्राप्ति हो जाय। अपना वियोग तो निश्चित ही है, परन्तु अगली साल संयोग होगा इसका पता नहीं। हम समझ-बूझकर भी नरकमें क्यों जायँ। इसलिये कार्यकी सिद्धिके लिये एकदम तत्पर हो जाना चाहिये। इस जीवनमें थोड़े दिनकी आपत्ति है। कायरताको त्यागकर शूरवीर बनना चाहिये।

भगवान् जिसके लिये प्रकट होते हैं, उसीको वह प्रकाश दीखता है। विष्णुभगवान्‌की छाया नहीं पड़ती। भगवान् विष्णुके शरीरका तेजस धातु है। छाया तो देवताओंकी भी नहीं पड़ती। भगवान् राम और कृष्ण दोनों ही परब्रह्म परमात्माके अवतार थे। उनका मनुष्य-अवतार था, इसलिये छाया पड़ती थी।

ऐसा विश्वास होना चाहिये कि भगवान् प्रकट होनेवाले हैं। ऐसा विश्वास हो जाय तो भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

किसी भी भाईको भगवान्‌का ध्यान करना कठिन नहीं मानना चाहिये। भगवान्‌का ध्यान करना तो ऐसी मामूली बात है कि जैसे किसी देखी हुई बातका आकार बँध जाना। ध्यानावस्थामें भगवान्‌का प्रकट होना क्या कुछ कठिन बात है? हमलोगोंने उसे कठिन मान रखा है इसलिये कठिन है। विश्वास करनेपर भगवान् प्रकट होते हैं।

जो मनुष्य एक बार हृदयसे कह देता है कि प्रभो! मैं आपका हूँ, भगवान् उसे त्यागते नहीं, अपना लेते हैं।

भगवान्‌का स्वरूप आकाशके भीतर कैसा चमक रहा है। भगवान्‌की अवस्था सोलह वर्षके राजकुमार-जैसी है। सुन्दर, अद्‌भुत स्वरूप दीख रहा है। चन्द्रमाके प्रकाशसे करोड़ों गुना प्रकाश अधिक दीख रहा है, शान्तिका साम्राज्य विराजमान है, प्रेमकी मूर्ति हैं। भगवान्‌का मुखारविन्द बड़ा सुन्दर कुछ लम्बा-सा है, भगवान् आकाशमें खड़े हैं। भगवान्‌के चरणारविन्द बड़े सुन्दर हैं। पैरोंके तलवे कुछ लाल हैं, गुलाबी हैं। कोमलता फूलोंसे भी बढ़कर है, चरणारविन्द बहुत चिकने हैं। प्रभु पीताम्बर पहने हैं। पीताम्बर बहुत चमक रहा है, प्रभु मन्द-मन्द हँस रहे हैं, प्रभुके ध्यानसे सारे पापोंका नाश होकर रोमांच हो जाता है। फिर प्रभुका साक्षात्कार होनेपर वह प्रभुमें टकटकी लगाकर प्रभुकी ओर देखता रहता है। यह भी आपकी कृपा ही है कि मैं आपका ध्यान करते हुए भी वर्णन कर रहा हूँ और बेसुध नहीं होता। प्रभुका मूल्य प्रेम है।

❑❑

सिद्धके स्वप्नमें भी दोष नहीं घट सकता

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओंमें परमात्माकी प्राप्तिके निकट पहुँचा हुआ साधक सुषुप्तिसे जागनेपर अपनी स्थिति पकड़ता है। सिद्ध पुरुष तो पकड़ने और छोड़नेसे अलग ही है। साधक कभी द्रष्टा भी हो सकता है। सिद्धके लिये जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाएँ स्वप्नवत् हैं। ऊँचे साधकको भी ये सब स्वप्नवत् हैं, किन्तु साधकके स्वप्नमें क्रोध आदि घट सकते हैं, सिद्धमें नहीं। ऊँचे साधकमें दोष आनेकी गुंजाइश है।

ऊँचे साधकमें पानीमें लकीर खींचनेकी तरह क्रोध प्रतीत होता है और नष्ट हो जाता है। केवल लकीर प्रतीत-सी होती है। ऊँचे साधकमें क्रोधकी आकृतिमात्र रहती है। सिद्ध पुरुषके आकाशमें लकीर खींचनेकी तरह अंगुली हिलती-सी दीखती है। उस जगह आकृतिमात्र भी नहीं है।

ऊँचे साधकमें यदि जाग्रत्में थोड़ा भय होगा तो स्वप्नमें भी थोड़ा भय होगा। सिद्धके स्वप्नमें भी भय नहीं हो सकता। ऊँचे साधकमें यदि जाग्रत्में दोष नहीं घटते हैं तो स्वप्नमें घट सकते हैं। जैसे रेलमें जा रहे हैं, जाग्रत्-अवस्थामें नीचा व्यवहार किसीसे नहीं होता है, पर स्वप्नमें हो सकता है। जिसके स्वप्नमें होता है, उसके जाग्रत्में भी होनेकी गुंजाइश है।

स्वप्नमें किसीको सिंह मिले और डरसे हृदय धड़कने लग जाय तो वह साधक ही है। स्वप्न मनुष्यकी असली स्थिति बताता है। जाग्रत्में तो मनुष्यको धोखा भी हो सकता है।

प्रवचन—दिनांक १९-६-१९३६, शुक्रवार, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

बारहवें एवं चौदहवें अध्यायमें जो समताकी बात कही गयी है, उस जगह सोने और मिट्टीमें समता, निन्दा-स्तुतिमें, शत्रु-मित्रमें समताकी बात कही गयी है, इसमें और ब्रह्मकी समतामें क्या अन्तर है। इन सबकी समता तो जड़ प्रतीत होती है और परमात्माका स्वरूप चेतन है। समतामें जिसकी स्थिति है, उसीकी ब्रह्ममें स्थिति है। इस समता और उस समतामें क्या अन्तर है।

इस जड़ समतासे ही ब्रह्ममें स्थिति है, इसका पता चलता है। इस जड़ समतामें दोष घटे तो वहाँ परमात्मामें भी समता नहीं है। जैसा बिम्ब होता है, उसका प्रतिबिम्ब भी वैसा ही होगा। इस कार्यसे यह बात पकड़ी जाती है। परमात्माका स्वरूप सम है, वह विलक्षण सम है, निर्दोष है। इस जड़के कार्यसे ही चेतनका कार्य सिद्ध होता है। स्वप्नमें किसी प्रकारका दोष घटता है तो जाग्रत्‌में भी घट सकता है। यहाँके जो विकार हैं वे वहाँके साक्षी हैं। मनुष्यमें यदि कोई दोष है और वह जाग्रत् अवस्थामें नहीं पकड़ा जाता है तो स्वप्नावस्थामें पकड़ा जा सकता है।

यह जो समता है वह जड़ है। यह जड़ समता चेतन समतामें स्थित है। सूक्ष्म चीज ही मोटी चीजमें प्रवेश कर सकती है।

आकाशकी निराकारता भगवान्‌की निराकारता नहीं है। भगवान्‌की निराकारता बहुत बड़ी है। परमात्मा शाश्वत हैं, अनन्त हैं, अनादि हैं, नित्य हैं। शाश्वत आदि ये कालवाचक शब्द हैं।

परमात्माके कालमें भेद नहीं होता। बर्फका देश जल है, संसारका देश प्रकृति और प्रकृतिका देश परमात्मा है। परमात्माका देश विलक्षण है। प्रकृतिमें भूत, भविष्य और वर्तमान मालूम पड़ते हैं, पर प्रकृतिका अंत ही काल है।

परमात्मा इस कालको भी खा जाता है। वहाँ प्रकृति भी नहीं

रही। अब वह कैसा काल है इसको कैसे समझें? उसके बीचमें अद्‌भुत समता है, वह महाकाल है।

संसारका आनन्द क्षणिक है और नाशवान् है, किन्तु परमात्मारूप आनन्द अपार है। उसका कभी नाश नहीं होता। एक आदमीने स्वप्नमें चोरी की तो समझना चाहिये कि अभीतक उसके चोरीके संस्कार नहीं गये।

जाग्रत्‌में हमलोग जो कार्य कर रहे हैं वह स्वप्नके लिये ही तैयार कर रहे हैं। जितना सुधार हमने अपने जाग्रत्‌का कर लिया, स्वप्नमें भी वह सुधार होता चला जाता है।

जितना दम्भ-पाखण्ड हम जाग्रत्‌में करते हैं, वह स्वप्नमें होगा ही। इसी तरह आदमीका वश स्वप्नमें नहीं चलता। स्वप्न एक कसौटी है। इसी प्रकार समता भी परमात्माके स्वरूपकी कसौटी है।

❑ ❑

सत्संगका दुरुपयोग न करें

संसारमें जितने भगवत्प्राप्तिके साधन हैं सब ध्यानके लिये ही हैं। ध्यान परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। सबसे बढ़कर परमात्माका ध्यान है। इसलिये हर एक भाई-बहिनको ध्यानकी ओर ध्यान देना चाहिये। ध्यानसे पाप और विक्षेपका नाश होता है और ध्यानसे परम शान्तिकी प्राप्ति प्रत्यक्ष होती है। ध्यान हर समय रहे तो उसके कल्याणमें शंका नहीं है। मनुष्यसे और कोई साधन नहीं हो सके, केवल ध्यान ही करे तो उसका भी कल्याण है।

सत्संगका दुरुपयोग—सत्संगका दुरुपयोग यह है कि हमलोग सत्संग तो करते ही हैं, ऐसा मानकर अपना साधन ढीला कर दें। अपना कल्याण तो इससे हो ही जायगा। जैसे काशीमें रहकर यह मान ले कि मेरी मुक्ति तो हो ही जायगी, साधन ढीला कर दे और मान ले कि यहाँ पाप करनेमें क्या हर्ज है, मुक्ति तो हो ही जायगी।

कोई आदमी नामका आश्रय लेकर पाप करता है कि भजन करके पाप नाश कर लेंगे, जो आदमी भजनके सहारे पाप करता है वह भजनको कलंक लगाता है, उसका पाप भोगे बिना कभी भी नष्ट नहीं होता।

जो आदमी सत्संगका सहारा लेकर मान बैठे कि कल्याण तो हो ही जायगा, भजन-ध्यान करो चाहे मत करो, वे लोग भूलमें हैं, यह सत्संगका दुरुपयोग है।

अन्तकालमें भगवान्‌के नामसे पाप नष्ट हो जायँगे, यह मानना ठीक है। साधक सत्संग करता ही रहे, कभी छोड़े ही

प्रवचन—दिनांक २०-६-१९३६, शनिवार, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

नहीं। हमलोग राजी-खुशी चल रहे हैं, चलते-चलते ही मर सकते हैं, ऐसा समझकर सावधान रहना चाहिये। परमात्माकी प्राप्ति सब कुछ देकर भी करनी चाहिये। आज हमारी मृत्यु हो जाय तो कौन रक्षा करनेवाला है। माता, पिता, धन, स्त्री, पुत्र ये सब हमारे क्या काम आ सकते हैं? इसलिये परमात्माकी शरण हो जाओ। परमात्मासे प्रार्थना करो कि हे प्रभो! मेरा नित्य-निरन्तर आपका ध्यान बना रहे। हमलोगोंको ध्यान रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। निरन्तर ध्यान रहा तो अन्तकालमें भी रहना सम्भव है। जिसके निरन्तर ध्यान रहेगा उसको स्वप्नमें भी ध्यान रहेगा।

भगवान् कहते हैं जो मनुष्य अनन्यचित्तसे मेरा ध्यान करता है उसके लिये मैं सुलभ हूँ—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

ध्यानसे बढ़कर संसारमें कोई चीज नहीं है। ध्यानसे पाप और अवगुणका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। इसलिये हम सबको अधिक-से-अधिक समय ध्यानमें लगाना चाहिये। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि एक क्षण भी ध्यान नहीं छूटे।

ध्यानका रस जब आने लग जायगा, तब ध्यान छूट ही नहीं सकता। यहाँ तो वैराग्य भूमि है, यहाँ वैराग्यकी वृत्तियाँ स्वाभाविक बनती हैं। जिस जगह भगवान्‌की चर्चा होती है, वहाँकी तो बात ही क्या है। यहाँ तो ध्यान लगना स्वाभाविक बात है।

आनन्दके समुद्रमें खूब डूब जाना चाहिये। समुद्रमें डूबे हुएको जैसे जल-ही-जल दीखता है, वैसे ही अपने चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द देखना चाहिये।

हमारे पास तीनों समय कम हैं। एक तो अभी ग्यारह बजनेवाले हैं, दूसरे स्वर्गाश्रमसे जानेका भी समय कम रहा है, तीसरे संसारसे शीघ्र जानेका नम्बर है। समय बीता जा रहा है समय बड़ा ही मूल्यवान् है। घरमें जाकर खूब जोरसे साधन करना चाहिये, प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ वैराग्य उत्पन्न कर देना चाहिये। इस वट वृक्षके दृश्यको याद कर लेना चाहिये। एकान्तमें बैठकर ध्यानके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। मनको वीरताके साथ वशमें करना चाहिये। जैसे अकेला अर्जुन ही सारी सेनाको परास्त कर दिया करता था, इसी प्रकार वीरता, धीरता और गम्भीरताके साथ काम, क्रोधकी सेनाके साथ युद्ध करे तो विजय पा सकता है। अर्जुनकी शंखध्वनि सुनकर लोग काँपने लग जाते थे। वैसे ही यहाँ परमात्माके नामकी ध्वनि है। नामकी ध्वनिसे ये काम-क्रोध काँपने लग जायँगे। ऐसा न हो तो बाण चला देवे। बाणसे वे काम, क्रोध आदि सब चले जाते हैं। ध्यान ही बाण है। वीरताके साथ रहनेपर किसकी सामर्थ्य है जो उसके पास आ सके। वीरता, धीरताके सामने दुर्गुण दुराचार आ ही नहीं सकते। घर जाकर रात-दिन साधन-ही-साधन करना चाहिये।

ध्यानके लिये बैठे तब पहले प्रेम और श्रद्धासे भगवान्के नामका जप कर ले, फिर ध्यान करे। ध्यानके समय खूब सावधानीसे रहे। कहीं आलस्य, विक्षेप आदि शत्रु न आ जायँ। विक्षेपके नाशके लिये श्वासका जप है या गुंजाहटसे भगवान्के नामका जप करे, उससे भी विक्षेपका नाश होता है। आलस्यके नाशके लिये आसनसे बैठे, ग्रीवाको सीधी रखे, नेत्रोंको खुला रखे, शास्त्रोंमें प्रविष्ट होकर बुद्धि लगावे, उससे बुद्धि तीक्ष्ण होकर फिर आलस्य नहीं आता।

भजन, ध्यान, सत्संग और गंगास्नान इनके पूर्व ऐसी भावना करनी चाहिये कि इससे हमारा सब पाप नष्ट हो ही जायगा, ऐसी श्रद्धा-विश्वास करें।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

चाहे कैसा भी पापी क्यों न हो, भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण करनेसे तुरन्त पवित्र हो जाता है। इसी प्रकार गंगास्नान करनेसे भी पापोंका नाश हो जाता है। जैसी भावना करेंगे, वैसे ही बन जायँगे।

नामके उच्चारणके साथ-साथ नामीका ध्यान करना चाहिये। यह दामी जप है। इसका बड़ा भारी प्रभाव है, इसमें कोई परिश्रम नहीं है।

जैसे मूढ़ आदमी अपने चारों तरफ आकाशको देखता है, वैसे ही साधकको आनन्द-ही-आनन्द समझना चाहिये। देखो शरीरके बाहर-भीतर सब ओर आनन्द-ही-आनन्द प्रतीत हो रहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोहकी तो बात ही क्या है? सात्त्विक वृत्तियाँ भी इस समय उत्पन्न नहीं हो सकतीं।

ज्ञान ही आनन्द है और आनन्द ही ज्ञान है, अमृतका पान हो रहा है। यह विश्वास करे कि मैं हर समय इसी प्रकार आनन्दमें डूबा रहूँ, इस आनन्दका कोई क्या वर्णन कर सकता है?

आनन्दके अनुभवमें आँख बंद करनेपर जो प्रकाश दीख रहा है, उसीमें भगवान् साकाररूपसे प्रकट हो जाते हैं। आँख खोलनेपर भी साक्षात्-रूपसे प्रकट हो सकते हैं। साकाररूपका आवाहन करे।

गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे।
कृष्ण मुरारे दीन पियारे गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥

इस प्रकार प्रार्थना करें हे नाथ! आप साक्षात् प्रकट होना नहीं चाहते हैं तो ध्यानमें तो प्रकट हो जाइये।

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

हे नाथ! मैं सम्पूर्ण साधनोंसे हीन हूँ, आपने बड़ी कृपा की। भगवान् श्रीकृष्णजी सामने खड़े हैं, मुखारविन्द बड़ा सुन्दर है, शक्तिमय है। प्रेमसे मेरी ओर देख रहे हैं। वंशी बजा रहे हैं। लगभग ग्यारह-बारह वर्षकी आयु है, भगवान् मंद-मंद हँस रहे हैं। भगवान्‌का महान् तेज स्वरूप है, आनन्दकी मूर्ति हैं, श्याम रंग है। चरण मुलायम, चमकीले और सुन्दर हैं। प्रभु पीताम्बर पहने हैं, वह चमक रहा है। प्रभुकी नाभि गम्भीर और हाथ बड़े लम्बे हैं। हाथमें कड़े आदि पहने हुए हैं, गलेमें कई प्रकारकी माला पहने हैं, सारा शरीर चमक रहा है, छाती चौड़ी है, शरीर बड़ा चिकना और मुलायम है। ओष्ठ लाल हैं। भगवान्‌के कपोल बड़े सुन्दर हैं, भगवान्‌के कान बड़े सुन्दर हैं, जिनमें मकराकृत कुण्डल पहने हुए हैं। प्रभु प्रेमसे देख रहे हैं। मनुष्य एक बार भी प्रभुकी तरफ देख लेगा तो फिर नजर हटाना चाहकर भी नहीं हटा सकता। भगवान्‌के मस्तकपर तिलक शोभायमान है। रत्नजड़ित मुकुट भगवान्‌के मस्तकपर शोभायमान है। गलेमें एक दुपट्टा डाल रखे हैं। सारे आभूषण चमक रहे हैं। भगवान्‌का स्वरूप बहुत सुन्दर है। भगवान्‌के स्वरूपको देखकर पशु-पक्षी सभी चकित हो जाते हैं। प्रभुका रूप-लावण्य अलौकिक है, प्रभुके तलवेमें कैसी सुन्दर लाली है। प्रभु दयाके सागर हैं, प्रभुमें क्षमा भी अपार है। शान्तिके भण्डार हैं। प्रभु प्रेमके अवतार हैं। एक बार जिनका प्रभुके साथ प्रेम हो जाता है, फिर उसको सारा संसार फीका मालूम पड़ता है, क्योंकि आप रसराज हैं। आपकी मूर्ति बड़ी सुन्दर है, मधुर है, आप प्रेमसे कुछ तिरछे खड़े हैं।

प्रभुका सारा शरीर बाँका हो जाता है, इसलिये आपको बाँकेबिहारी कहते हैं। आपका ध्यान करनेसे मनुष्य परम पवित्र हो जाता है।

ध्यानके समय शरीरको भूल जाय, मनको एकदम परमात्मामें लगा दे। यह स्थिति सदा बनी रहे। मेरा तो ऐसा शरीर हो रहा है कि शामतक बैठा ही रहूँ। किसीका चिन्तन तो हो ही नहीं सकता।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते॥

(गीता ४। २७)

दूसरे योगीजन इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको और प्राणोंकी समस्त क्रियाओंको ज्ञानसे प्रकाशित आत्मसंयमयोगरूप अग्निमें हवन किया करते हैं।

संयमसे स्वयं प्राणोंका निरोध हो जाता है।

❑ ❑

चेतावनी

प्राण निकल जानेके बाद यह शरीर किसी काम नहीं आयेगा। अपना तन, मन, धन परमात्माकी प्राप्तिमें लगा देना चाहिये। अपने माता-पिता-कुटुम्बी चले गये, उनसे अपना कुछ सम्बन्ध नहीं रहा। हमको परमेश्वरने बुद्धि दी है, ज्ञान दिया है, तब भी इस अमूल्य समयको व्यर्थ खो देंगे तो मूर्खता ही है। यह जीवन बड़ा अमूल्य है।

संसारमें असंख्य कोटि जीव हैं, उनमेंसे दुनियाभरमें इस समय केवल दो अरब मनुष्य हैं। असंख्य कोटि जीवोंमेंसे भगवान्ने दया करके मनुष्य-जीवन दिया है। जिस कार्यके लिये भगवान्ने हमें मनुष्य-जीवन दिया है, वह कार्य तत्परतासे सिद्ध कर लेना चाहिये। इस जन्ममें भगवत्प्राप्ति नहीं की तो करोड़ों योनियाँ भोगनी पड़ेंगी। पता नहीं फिर कब मनुष्य-जन्म मिले। मनुष्य-जीवनका प्रत्यक्ष फल प्राप्त कर लेना चाहिये।

भगवत्प्राप्तिका मार्ग बड़ा सुगम है, संसारमें सबसे पवित्र है, हाथोंहाथ प्रत्यक्ष फल मिलता है, धर्ममय है, धर्मानुकूल है, ऐसा समझ करके हरेक भाई-बहनको इसे जाननेके लिये तत्पर हो जाना चाहिये।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९।२)

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

प्रवचन—दिनांक २०-६-१९३६, शनिवार, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

भगवान्‌ने आज्ञा भी दी है कि तू मेरी शरण हो जा, मेरी शरण होनेसे स्त्री, शूद्र, पापयोनि सबका मैं कल्याण कर देता हूँ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९।३२)

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।

इस नाशवान् क्षणभंगुर मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर मेरा ही भजन कर।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९।३३)

सब जीवोंको आराम पहुँचाना ही मेरी सेवा है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(गीता ९।३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

भगवान् श्रीकृष्णको श्रद्धासे नमस्कार करनेसे दस अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला तो संसारमें जन्म लेता है, परन्तु भगवान् कृष्णको नमस्कार करनेवाला जन्म नहीं लेता।

अन्तसमयमें भगवन्नामका जप करनेवालेका, स्वरूपका ध्यान करनेवालेका कल्याण हो जाता है। एक क्षणके भगवान्‌के ध्यानके मूल्यके बराबर पृथ्वीभरका धन भी नहीं हो सकता। जब भगवान्‌के ध्यानमें आनन्द आ जाता है, उस समय त्रिलोकीका राज्य भी तुच्छ प्रतीत होता है, इसलिये भगवान्‌की शरण होकर भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५।१९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९।३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९।३१)

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

भगवान्‌के इतना विश्वास दिलानेपर भी हम भगवान्‌का भजन नहीं करते, यह कितनी नीचता है।

ध्यानकी मस्तीमें इन्द्रका भोग भी कुत्तेके भोगके समान मालूम पड़ता है। उस अवस्थामें कुत्ते और इन्द्रमें कुछ फर्क नहीं जान पड़ता। जिस सुखकी सीमा नहीं है, उस सुखको प्राप्त करना चाहिये।

ऐसे आनन्दमयको छोड़कर जो विषय-भोगोंमें मन लगाता है वह अमृतको छोड़कर मल-मूत्रका पान करता है। जितनी भक्ति कुत्तेकी उसके मालिकके प्रति रहती है, उतनी ही भक्ति मनुष्यकी भगवान्‌के प्रति हो जाय तो कल्याण हो जाय।

ये सारी बातें जोरोंके साथ काममें लानी चाहिये। जिस प्रकार राजा युधिष्ठिर धर्मसे नहीं हटते थे, उसी प्रकार सबको धर्मके पालनमें डटे रहना चाहिये। ऐसे महात्माके ध्यानसे हृदयमें सद्‌गुणोंका संचार होता है, इस प्रकार सारी बातें सोचकर हमें राजा जनक एवं तुलाधारकी तरह अपना जीवन बिताना चाहिये। दुःखमें भी आनन्द समझे। पत्थर, सोना और मिट्टीमें कोई भेद न समझे। यह त्यागका रास्ता है।

परमात्मा सर्वव्यापी है, ऐसा सोचकर दूसरोंकी सेवा करना ही अपना कार्य समझे। ऐसा करनेसे आत्मा बहुत बलवान् और बुद्धिमान् हो जाती है। गोपियाँ घरका काम करती हुई मुँहसे भगवान्‌के नामका जप और मनसे ध्यान करती थीं। हमको भी ऐसा साधन करना चाहिये।

❑❑

नियमपालन और विश्वासकी महिमा

कोई भी मनुष्य यदि आज दृढ़ निश्चय कर ले कि आज भगवान् अवश्य मिलेंगे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे भगवान् आज ही मिलेंगे। ऐसा निश्चय करना तो अपना काम है। पर इसमें भगवान्‌की दयाको भी निमित्त बना लें। जैसे कोई परम मित्रके पहुँचनेका तार आ जाय तो हम उसके स्वागतके लिये कितनी व्यवस्था करते हैं और प्रतीक्षा करते हैं। प्रभुके लिये ऐसी ही व्यवस्था करे और प्रतीक्षा करता रहे। प्रभु इस बातको जानते हैं कि कौन उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। आज उसे सच्चे मनसे पुकारेंगे तो उसे बहुत फुरसत है।

उस समय आपकी दो प्रकारकी दशाएँ होंगी—एक तो आर्तभाव, परम व्याकुलता जैसे मछलीको जलसे अलग होनेपर होती है। जल तो जड़ है, प्रभु चैतन्य हैं, वे बड़े दयालु हैं। इस प्रकारका भाव होना बहुत अच्छा है। दूसरा भाव प्रेमका है। जैसे हमारे मित्रके आनेका दृढ़ निश्चय होता है, उसमें प्रसन्नता एवं प्रतीक्षा होती है, इसी प्रकार प्रभुमें प्रेम होनेपर वे अवश्य पहुँच जाते हैं। नियम और प्रेम दोनों रखें। नियम पपीहेका होता है, वह स्वातिकी बूँदसे ही अपनी प्यास बुझाना चाहता है, बादल बरसे तब भी उसका नियम नहीं टूटता। प्रेममें कमी नहीं आती। यहाँतक कि उसके प्राण भी चले जायँ तब भी नियम नहीं तोड़ता। इसमें बादल तो जड़ है, वैसे ही बरस जाता है। प्रभु तो चैतन्य हैं और बड़े दयालु हैं, वे अपने प्रेमीको मरने नहीं देते।

प्रवचन—दिनांक २९-१२-१९३६, दोपहर, गोरखपुर।

इसी प्रकार हम भी नियम कर लें कि सिवाय प्रभुके और किसीका चिन्तन नहीं करेंगे। इसपर कोई कहे कि नियम निभेगा नहीं। हमें यह विश्वास कर लेना चाहिये कि प्रभु ही निभावेंगे, फिर भी हम कहें कि निभेगा नहीं तो इसमें कमी तो हमारी ही है। हम कैसे कहते हैं कि नहीं निभेगा। पहलेसे ही ऐसा विपरीत निश्चय कर लेते हैं कि प्रभु नहीं मिलेंगे। कोई कहे कि यदि मैं कह दूँ कि आज तुमको भगवान् अवश्य मिलेंगे तो मिल जायँगे। इस बातमें मुझे इतना विश्वास नहीं है कि मैं ऐसा कह दूँगा तो तुम्हें विश्वास हो जायगा। मुझको भी ऐसा विश्वास बढ़ाना चाहिये कि तुम्हें दर्शन हो जायँगे और तुम्हें मेरी बातपर विश्वास बढ़ाना चाहिये। कोई कहे कि हमारी मन बुद्धिमें विचारसे ऐसा मालूम होता है कि आप कह दें कि हमें भगवान् मिल सकते हैं तो मिल सकते हैं। प्रथम तो मुझमें ऐसी योग्यता नहीं और दूसरे आपमें वैसा विश्वास नहीं दिखायी पड़ता, क्योंकि यदि वैसा विश्वास होता तो जैसा आचरण, जैसा बर्ताव मेरे प्रति होना चाहिये था, वैसा नहीं होता और मेरे कहनेसे भगवान् मिलते हों तो फिर ऐसी अवस्थामें भगवान‍्से मिलनेकी आवश्यकता क्यों रखे। जिसके वशमें भगवान् हों उसीसे मिले, क्योंकि अपने तो भगवान‍्को वशमें करना है। लोग मुझे प्रसन्न करनेके लिये कह देते हैं और मैं भी समझ लेता हूँ कि ये विनोद कर रहे हैं।

करोड़ोंमें कोई एक भगवत्प्राप्त मनुष्य होता है और उनमें भी कोई विरला ही होता है जो भगवान‍्को मिला सके। कोई कहे कि भगवत्प्राप्त पुरुष मार्ग तो बतला सकते हैं। यह ठीक है तो फिर लोग इतने अच्छे मार्गपर क्यों नहीं चलते? इसका उत्तर यही है कि इस विषयमें विश्वास नहीं है। इसी कारण समस्त संसारकी यह दशा हो रही है, इसपर कोई कहे कि ऐसा प्रभुकी

दया और महापुरुषोंकी दयासे हो सकता है। महापुरुष तथा प्रभुकी दया तो है ही, फिर भी काम नहीं होता। या तो उनकी दयासे काम नहीं होता अथवा उनकी दया नहीं है अथवा यह मानना होगा कि उनकी दया है, उससे काम भी बनता है, पर हमें उनकी दयामें विश्वास नहीं है। हमने उनकी दयाको माना नहीं है, बात वास्तवमें यही है।

इसमें रुक्मिणीजीका उदाहरण लिया जा सकता है। उन्होंने प्रतिज्ञा की और भगवान् मिले। इसमें कोई कहे कि मिले तो सही, पर बहुत विलम्बसे मिले। ऐसा उदाहरण भी है जिसमें भगवान् भक्तोंके समीप अति शीघ्र पहुँच गये। गोपियाँ, गजेन्द्र और द्रौपदीके उदाहरण हैं। ये भी सटीक उदाहरण नहीं हैं, क्योंकि यहाँ तो दुःख निवारणकी ही आवश्यकता थी।

केवल भगवान्से मिलनेके लिये ही भगवान्को चाहे तो उस जातिका विरह दूसरा ही है। गोपियोंका उदाहरण इस विषयमें कुछ ठीक है, पर उन्होंने भगवान्को पहले देखा था। कब मिलेंगे इसका उन्हें पक्का निश्चय नहीं था।

भगवान् ठीक समयपर आयेंगे ही, इस आशाका कैसा भाव रहता है यह नहीं कहा जा सकता। उनके वियोगमें भी अत्यन्त विलक्षणता, आशा और आनन्द रहता है और साथ ही विह्वलता भी रहती है। जैसे हमारा कोई परम प्रिय मित्र आनेवाला होता है तो कितनी आशा-विह्वलता होती है? उससे करोड़ों गुणा भगवान्के मिलनेकी दृढ़ आशामें होता है, पर यह उदाहरण भी इसी तरहका है जैसे सूर्यकी उपमा करोड़ों जुगनुओंके साथ दी जाय।

कोई अर्जुनकी प्रतीक्षाकी बात कहे तो इसमें भी आनेकी आशा तो है पर भगवान्के आनेका समय बिलकुल ठीक निश्चित नहीं है। अब सुतीक्ष्णजीका उदाहरण लेकर देखें तो

उसमें भी यही बात है। उनके प्रभुके आनेका निश्चय तो है पर ठीक-ठीक निश्चित समयसे वह भी अनभिज्ञ हैं। जहाँ उन्हें समाचार मिला प्रभु पधारे हैं, सुनते ही उस ओर दौड़े, आगे चलकर प्रेममें उनकी यहाँतक दशा हो गयी, वह इतने मगन हो गये कि उन्हें स्वयंका भान नहीं रहा। रास्तेमें अचल होकर बैठ गये। भगवान् उनके समीप आकर जगाने लगे, पर वह ध्यानमें इतना मग्न थे कि उन्हें जरा भी पता नहीं चला। भगवान्‌ने देखा कि उन्हें मेरी भी परवाह नहीं है। कोई इस उदाहरणको ठीक बताये तो इसमें भी जरा-सी कमी है। उसे ज्ञात नहीं था कि भगवान् घंटे-दो-घंटेमें कब मिलेंगे, आज भगवान्‌के मुझे दर्शन होंगे, यही समझकर उनकी ऐसी दशा हुई थी।

हम किसीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस समय जैसी आशा होती है वैसी होनी चाहिये। जैसी कि अयोध्यामें हनुमान्‌जी द्वारा निश्चित खबर पहुँचनेपर आकाशमें दूरसे विमान दीखनेपर अयोध्यावासियोंकी थी। उनके विषयमें स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने श्रीमुखसे बड़ाई करते हैं—

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

मेरे लिये कितना उत्साह है, कितनी आशा प्रतीक्षा कर रहे हैं और कितनी चाह हो रही है, इसीलिये प्रभुने अयोध्यामें ग्यारह हजार वर्षोंतक निवास किया। भगवान् जब लंकासे अवधमें पधारे, उस समयका कैसा सुन्दर तथा विलक्षण वर्णन है।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

किसी मनुष्यसे यदि सब मिलना चाहें तो एक ही समयमें सभी नहीं मिल सकते, पर प्रभु सबसे मिल सकते हैं। उस समय

सबको यही प्रतीत हो रहा था कि प्रभु सबसे पहले मुझसे ही मिल रहे हैं।

कोई इस उदाहरणको ठीक बतावे तो कहा जा सकता है कि मिलनके पूर्वकी स्थिति इससे भी बढ़कर हो सकती है; क्योंकि अवधवासियोंने पहले तो प्रभुके दर्शन किये थे।

यह विलक्षण स्थिति होती है, उस दशाको कोई समझ नहीं सकता। तभी तो शिवजी कह रहे हैं—*उमा मरम यह काहुँ न जाना॥* इस रहस्यको कोई विरले ही जानते हैं।

जैसे अच्छे पुरुषका यह भाव रहता है (वास्तवमें तो उनका कोई भाव नहीं रहता, पर उनमें प्रतीति होती है इसलिये कहा जाता है) कि उनके-जैसी स्थिति सबकी हो जाय। इसके लिये वह बहुत प्रयत्न भी करते रहते हैं और किसी अंशमें उन्हें अपने प्रयत्नमें सफलता भी मिलती है और किसी अंशमें नहीं भी मिलती, परन्तु प्रभु तो उनसे भी अधिक चेष्टा करते हैं। इसपर कोई कह सकता है कि प्रभु इतना प्रयत्न करते हैं तो फिर मिलते क्यों नहीं? इसका कारण यही है कि हमें उनके प्रयत्नमें विश्वास नहीं है, यह बड़े मर्मकी बात है। इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि प्रभुकी इच्छा तो पूरी होगी ही। हमारी इच्छा पूरी हो इसमें हम लाचार हैं, पर प्रभुकी इच्छा पूरी न हो ऐसा नहीं हो सकता। जब हमारी इच्छा उनसे मिलनेकी हो जायगी तो इस कमीके दूर होनेपर सारा भार भगवान्‌पर आ जायगा, क्योंकि हम तो लाचार रहते हैं। अब प्रश्न यह है कि चाहना कैसे हो? किसी कविने कहा है—

लगन लगन सब कोइ कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजै खोय॥

मनका खोना यही है कि प्रभुके सिवाय किसीका ज्ञान न रहे और तनका भी भान न रहे। लगन ऐसी होनी चाहिये, जैसी पपीहेकी होती है।

भक्तके प्रेमके वशमें होकर जब उससे भगवान् मिलते हैं, तब प्रभुको बड़ा आनन्द होता है। हमें तो ऐसा बन जाना चाहिये कि हम केवल प्रभुको देख-देखकर मुग्ध हो जायँ। हम ऐसे बन जायँ कि प्रभु हमें छोड़कर कहीं जायँ ही नहीं।

गोपियोंसे भी बढ़कर मनुष्य बन सकता है। हमलोगोंमेंसे जो यहाँ बैठे हैं, जो नीच-से-नीच हैं, वह पुरुष भी गोपियोंसे अधिक प्रेमी बन सकते हैं, क्योंकि संसारमें हमसे भी नीच थे, वे भी ऊँचे-से-ऊँचे बन गये। जब यह बात है कि भगवान् दयालु हैं परम प्रेमी हैं, फिर हम प्रेमी क्यों नहीं बन सकते। यह शंका है कि बन सकते हैं या नहीं? ऐसी शंका अज्ञान तथा अविश्वास्से ही उत्पन्न होती है। जब हम उन्हें सबसे बढ़कर समझने लगेंगे, उस समय इन बातोंकी याद भी नहीं रहेगी कि हम क्या खायेंगे, घरवालोंका क्या होगा? उस समय तो वह दर्शनीय व्यक्ति बन जाता है। उनके दर्शन करनेवालेकी भी वैसी दशा हो जाती है। जैसे भरतजीको भगवान्‌के चरण चिह्न मिल जानेपर उनकी विचित्र दशा हो गयी थी और उनकी दशा देखकर पशु-पक्षियोंकी अद्‌भुत दशा हो गयी थी।

भरतजी जब प्रभुकी ओर देखते हैं तो उन्हें विश्वास होता कि प्रभु अवश्य मिलेंगे, पर जब अपनी ओर तथा माँकी करनीकी ओर देखते तो निराश होने लगते। जब प्रभुके चरण-चिह्नोंके दर्शन हुए तो उन्हें विश्वास हो गया कि प्रभु अवश्य मिलेंगे। उनकी सारी दुविधा मिट गयी।

ऐसा नहीं समझना चाहिये कि भरतजीसे ऊँची अवस्था नहीं हो सकती। इनकी दशा सराहनीय माननी चाहिये, पर यदि इससे बढ़कर भी उनका प्रेम होता तो उनकी क्या अवस्था होती। प्रथम तो वे ननिहाल ही क्यों जाते और यदि चले भी गये तो पहले कैकयीके भवनमें प्रवेश क्यों करते? यह बात ठीक है कि

भरतजी-जैसा आदर्श भ्रातृप्रेम संसारमें नहीं है। पिताकी और भाईकी आज्ञासे राज्यका कार्यभार लाचारीसे देख रहे थे। पर वे भगवान्के साथ लंकामें और किष्किंधामें भी जा सकते थे। कोई कहे कि इससे भी बढ़कर प्रेम हो सकता है क्या? यदि हो सकता है तो उसका उदाहरण कैसा होगा। उदाहरण तो मिलनेपर ही पता चलेगा, पहले कैसे कहा जाय। भगवान् बोलीमें बड़े चतुर हैं, कहते हैं कि भरत-जैसा भाई नहीं हुआ अर्थात् कोई भाई भरत-जैसा नहीं है, पर प्रेमी इससे बढ़कर हो सकता है।

अभी हम यहाँ बैठे हैं, यहाँपर भगवान् किसी मनुष्यके रूपमें छिपे बैठे हों और हमारी सारी बातोंको देख रहे हों तथा सुन रहे हों। कोई कहे कि इसका प्रमाण क्या है? प्रमाण नीचे है—

सर्वत:पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत:श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

वह सब ओरसे हाथ-पैरवाला एवं सब ओरसे नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओरसे श्रोत्रवाला है, क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

हो सकता है कि भगवान् यह भी सोच रहे हों कि कोई पुरुष मुझसे मिलना चाहे तो मैं उससे मिलूँ। लौकिक उदाहरण देखिये—कोई आदमी मुझसे मिलना चाह रहा है, क्षण-क्षणमें खूब प्रतीक्षा कर रहा है, ऐसी अवस्थामें मैं पहुँच जाऊँ तो मुझको उससे भी अधिक आनन्द आयेगा। दोनोंमें जो अधिक प्रेमी होता है उसे अधिक आनन्द आता है, प्रभुमें तो हमसे अधिक प्रेम है ही, इसलिये उन्हें अधिक आनन्द आयेगा।

एक महापुरुषद्वारा लोगोंको अपने ऊपर श्रद्धा करानेका मौका देना महापुरुषकी दृष्टिसे अपने-आपपर कलंक लगाना है। इस दृष्टिसे कि मान-बड़ाईको शूकरी-विष्ठाके समान बताया

गया है। शूकरी-विष्ठा इसलिये कि दूसरी विष्ठाएँ तो अन्न आदिका विकार हैं, पर वह तो विष्ठाका ही विकार है। वे दूसरेके कल्याणके लिये कलंक समझते हुए भी अपने ऊपर कलंक ले लेते हैं, इतनी उनकी हमपर असीम दया है। कोई महापुरुष किसीकी सेवा स्वीकार कर लेता था तो लोग अपनेको धन्य मानते थे। ऐसी बातें शास्त्रोंमें कई जगह आती हैं। किसीके माँगनेपर कोई दस हजार रुपये दे दे तो उसकी दया मानते हैं, क्योंकि उसे दस हजारका घाटा हो गया, महात्माके इस प्रकारका कोई घाटा नहीं होता, किन्तु उसके महात्मापनमें जो कलंक लग गया, यही घाटा हो गया।

आपलोगोंने आज प्रातः कहा था कि आज लोग कम आये। आपकी दृष्टिसे वैसा कहना ठीक है, पर मैं ऐसा खयाल दिलाना चाहता हूँ कि मेरी दृष्टिको छोड़ दीजिये। महात्मा तो ऐसा चाहते नहीं और चाहते भी तो विशुद्धभावसे ही चाहते हैं।

राजाजी—कई बार हृदयके भावोंको प्रकट करनेमें बड़ाई हो जाती है, पर इस भावको लेकर नहीं कहा जाता कि आपकी प्रशंसा की जाय।

उत्तर—यह खयाल रखना चाहिये कि जो महान् पुरुषमें श्रद्धा-प्रेम रखते हैं, उनके चरणस्पर्श, चरणरज आदिसे लाभ होता है, पर उनकी इच्छासे यदि उसका भी त्याग कर दें तो और अधिक लाभदायक है। यह उससे भी अधिक महत्त्वकी बात है और जो बने हुए महात्मा होते हैं, वे तो इन बातोंका खयाल ही नहीं करते हैं। सच्चे महात्माओंके चरणस्पर्श आदिका त्याग मुक्तिका त्याग है, वहाँ फिर कामिनी, कंचनकी तो बात ही क्या है।

❑❑

साधनाको गुप्त रखें

विचारद्वारा हम चाहते हैं कि भगवान्‌का भजन करें, पर मनके पाजीपनके कारण नहीं कर पाते हैं। बुद्धिद्वारा विचार करते हैं कि संसारके पदार्थ बुरे हैं, पर मनको सांसारिक पदार्थ अच्छे लगते हैं। अब इसे संसारसे हटाकर भगवान्‌में कैसे लगाया जाय। सबसे उत्तम बात यह है कि प्रभुमें श्रद्धा-प्रेम बढ़ावे, फिर अपने-आप स्वाभाविक ही चिन्तन होगा। वास्तवमें साधनका फल श्रद्धा और प्रेम ही है और उपाय भी यही है। श्रद्धा और प्रेम ही प्रभुसे भेंट करा सकते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

जो मेरा अनन्य चिन्तन करता है उसका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ। प्रभुकी प्राप्तिके मार्गमें जहाँतक पहुँच गया है, वहाँसे गिरने नहीं देते, वहाँतककी रक्षा करते हैं और जितना भगवान्‌को प्राप्त करना बाकी रहा है, उसकी प्राप्ति करा देते हैं। कैसे?

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०।१०)

ऐसा बुद्धियोग देते हैं जिससे भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२।७)

हे अर्जुन! उन मेरेमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसारसागरसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

प्रवचन—दिनांक ५-१-१९३७, प्रातःकाल, गोरखपुर।

अब प्रश्न यह उठता है कि श्रद्धा-प्रेम कैसे हो? प्रभु तो बहुत दयालु हैं, प्रथम श्रेणीकी बात तो यह है कि प्रभुके नाम, गुण, तत्त्व, रहस्य आदिको प्रभुके प्यारे प्रेमी भक्तोंद्वारा सुनकर, मननद्वारा प्रेमको भीतर बढ़ावे। उसे गुप्त रखे, बाहर प्रकाशित न होने दे। गुप्त प्रेमका मूल्य बहुत अधिक होता है। छोटी नदीमें थोड़ा-सा जल आनेपर वह बह निकलती है, पर समुद्रमें कितनी ही बड़ी नदियाँ गिरें, वह अचल रहता है। एक लौकिक दृष्टान्तसे किसी अंशको समझाता हूँ।

एक कन्या है, उसकी एक लड़केके साथ सगाई कर दी गयी। कोई उसके ससुरालसे आकर यदि उसके पतिके गुणोंका, आचरणोंका वर्णन करने लगता है तो वह सुननेकी चेष्टा करती है, पर उसे गुप्त रखती है। ससुरालकी चीजोंको आयी हुई सुन-सुनकर प्रसन्न होती है। वर जब दुल्हेके रूपमें घर आता है, तब उसे कितना उत्साह रहता है। इसी प्रकार प्रभुके लिये भक्तको उत्साह रहता है। विरह व्याकुलता भी रहती है कि प्रभु कब मिलेंगे।

यहाँ दृष्टान्तको घटाइये, ईश्वर हमारा वर है, महात्मा सम्बन्ध करानेवाले हैं। वे भगवान्‌के गुणोंका बखान करते रहते हैं, प्रशंसा करते हैं। कन्याके लिये पाँच-पाँच चूड़ियाँ आती हैं, यह सुहागका चिह्न है। प्रभुका दरबार ससुराल है। यहाँ दस चूड़ियाँ हैं, पाँच यम और पाँच नियम। पाँच दाहिनेमें तथा पाँच बाँये हाथमें पहननेके लिये हैं।

पाँच यम हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

१-अहिंसा—किसीकी हिंसा नहीं करनी, किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न पहुँचाना।

२-सत्य—जैसा मनमें समझा हो, उसे प्रिय शब्दोंमें सरलताके साथ समझा देना।

३-अस्तेय—किसी प्रकार भी किसीकी वस्तु बिना पूछे नहीं लेनी।

४-ब्रह्मचर्य—किसी प्रकार भी वीर्यको स्खलित न होने देना।

५-अपरिग्रह—आवश्यकतासे अधिक संचय न करना।

पाँच नियम हैं—सन्तोष, शौच, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

१-सन्तोष—यथा लाभमें, प्राप्ति-अप्राप्तिमें सन्तोष रखे।

२-शौच—बाहर-भीतरकी शुद्धि।

३-तप—इन्द्रियोंको धर्मपर चलानेके लिये कष्टसहिष्णु बनाना।

४-स्वाध्याय—भगवान् और उनके नामका गुणगान।

५-ईश्वर-प्रणिधान—परमेश्वरकी शरणागति।

इनका पालन प्रभुके यहाँकी भेजी हुई दस चूड़ियोंको पहनना है। इन्हें बड़े चावसे धारण करें, जैसे कन्या करती है।

ससुरालसे दो वस्त्र आते हैं, उत्तरीय और अधो वस्त्र। मस्तक, गले, छाती आदिके आभूषण भी आते हैं।

मस्तकके तीन आभूषण सबसे बढ़कर हैं—विनय—सबको मस्तक नवाना, निष्कामभाव और सबमें समता। यह तीसरा आभूषण दूसरे सारे आभूषणोंका सिरमौर है।

कानोंमें कुण्डल या कर्णफूल हैं अपनी निंदा सुननेकी सहनशक्ति। अपनी निंदा तथा दूसरोंकी प्रशंसा तथा प्रभुकी प्रशंसा सुनकर जो प्रसन्नता होती है और अपनी स्तुति सुनकर जो संकोच होता है, यह कानोंका आभूषण है।

मुखका आभूषण है दाँतोंमें सोनेकी चोप लगाना। यह प्रिय, सत्य और हितकर मधुर वचनोंका बोलना है।

गलेका आभूषण है कंठा। प्रभुके प्रभाव, प्रेम रहस्यकी बातें कण्ठस्थ होना कण्ठके आभूषण हैं। चन्द्रहार जो हृदयका गहना

है वह प्रभुको अपने हृदयमें बसा लेना है। हाथोंका आभूषण कंगन है। अपने सत्त्वका परके लिये त्याग, दान, सेवा, उपकार आदि हाथोंका आभूषण है।

पैरोंसे चलना होता है। किसी महापुरुषके दर्शन, सत्संगके लिये गमन करना और मन्दिरोंमें प्रभुके विग्रहके दर्शनके लिये जाना पैरोंका आभूषण है।

इन उपरोक्त आभूषणोंको जो प्रेमसे धारण करता है, उसका समाचार प्रभुके पास पहुँचता रहता है। प्रभु एकदम मुग्ध हो जाते हैं। अतः भक्तके समीप वे ही चलकर आते हैं। लड़कीको जैसे वरके आनेसे प्रसन्नता होती है, पर वह गुप्त रखती है। इसी प्रकार हमें भी प्रभुके लिये गुप्त प्रेम-भक्ति करनी चाहिये। यह संक्षेपसे समझाया गया है।

प्रभुके प्रेम, गुण, प्रभाव, रहस्य, तत्त्व, मर्मकी चर्चा, श्रवण और कथन करनेसे प्रभुमें प्रेम होता है।

गुण—ज्ञान, क्षमा, समता, शान्ति, सरलता, दया, प्रेम, आदि गुण हैं। ये सब बातें प्रभुमें अतिशय हैं।

प्रभाव—जैसे कोई महापुरुषके आनेपर जो असर होता है, जैसे सूर्यका प्रकाश आता है, यह सूर्यका प्रभाव है। इसी प्रकार प्रभुमें अपरिमित प्रभाव है, उसे किसी प्रकार बतला नहीं सकते तथापि बतलाया जाता है। वे असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। कोई कहे कि क्या वे सारे संसारका उद्धार भी कर सकते हैं? क्यों नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं। करते क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि हम कहनेवाले कौन होते हैं। कोई कहे जबतक नहीं करते हैं, तबतक नहीं करते। ऐसा भले ही कोई समझा करे कि प्रभु ऐसा नहीं कर सकते। ऐसा समझने-वालेपर प्रभु नाराज नहीं होते, न अप्रसन्न होते हैं। वे तो गाली

देनेवालेको भी भोजन देते हैं। वे ब्रह्माको मामूली कीट और एक तुच्छ कीटको ब्रह्मा बना सकते हैं। पर यह तो उनके लिये मामूली बात है। इसे जाननेके लिये गीताका श्लोक देखिये—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

(गीता १०।४१)

हे अर्जुन! जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुई जान।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०।४२)

इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपनी योगमायाके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ, इसलिये मेरेको ही तत्त्वसे जानना चाहिये।

स्वरूप—प्रभुके कई प्रकारके स्वरूप हैं, साकार, निराकार, गुणातीत, द्विभुज, चतुर्भुज, सहस्रभुज और अव्यक्त।

द्विभुजकी महिमा—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(गीता ९।११)

सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप मेरे परम भावको न जाननेवाले मूढ़ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ परमात्माको तुच्छ समझते हैं। अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुएको साधारण मनुष्य मानते हैं।

चतुर्भुजरूप—

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥

(गीता ११।४६)

हे विष्णो! मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूँ। इसलिये हे विश्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुजरूपसे युक्त होइये।

कोई कहे कि चतुर्भुजरूपसे भगवान् अर्जुनको रथपर सदा दीखते होंगे, ऐसी बात नहीं थी। रथपर ऐसा रूप नहीं दीखता था। वहाँ तो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्धमें चक्र, गदा आदि धारण नहीं करूँगा। पहले अर्जुनने इस रूपमें देखा था, तभी कहा कि वह चतुर्भुजरूप दिखलाइये। यह रूप अर्जुनको ही दिखलाया था, दूसरोंको नहीं। विश्वरूप भी दिखलाया यह उपरोक्त श्लोकसे ही स्पष्ट हो रहा है।

निराकार स्वरूप—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(गीता ९।४-५)

मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् जलसे बर्फके सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं, किन्तु वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।

वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं; किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला और

भूतोंको उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है।

निराकार-साकार—

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥

(गीता ९।१९)

सूर्यरूपसे मैं ही तपता हूँ तथा वर्षाको वर्षाता हूँ। मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत्-असत् भी सब कुछ मैं ही हूँ।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३।१३)

वह सब ओरसे हाथ-पैरवाला एवं सब ओरसे नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओरसे श्रोत्रवाला है, क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परन्तु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्तिरहित और गुणोंसे अतीत हुआ भी अपनी योगमायासे सबको धारण-पोषण करनेवाला और गुणोंको भोगनेवाला है।

साकार स्वरूप—ब्रह्मा, विष्णु आदिके रूपमें प्रकट होता हूँ, यह बतलाया। तत्त्व, रहस्य और मर्मकी बातें भी भगवान्‌ने अर्जुनको बतलायीं। अपना परिचय दिया, अपने घरका तलपट, घरकी स्थिति उसीको बतलायी जाती है जो अत्यन्त प्यारा होता है। भगवान् अपने मर्मकी बात कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४।६)

मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४।७)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

(गीता ४।१०)

पहले भी, जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये

थे और जो मुझमें अनन्यप्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४।११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

इन श्लोकोंमें भगवान्‌ने अपना रहस्य बतलाया। जैसे भीष्मपितामहने अपनी मृत्युका रहस्य स्वयं खोल दिया था, इसी प्रकार भगवान्‌ने अपनेको जीतनेका, अपनेको वशमें करनेका उपाय अर्जुनको स्वयं बतलाया। इसके पहले भगवान् अर्जुनको अपना प्यारा भक्त स्वीकार करते हैं। '**भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।**' (गीता ४।३) उत्तम-से-उत्तम गुह्यतम रहस्य बता देता हूँ। इसीको मैंने सृष्टिके आदिमें सूर्यको बतलाया था। जहाँ भगवान्‌ने ऐसा रहस्य बताया वहाँ पहले गुह्य अवश्य कहा है। गीतामें राजगुह्य बताकर रहस्य खोला।

पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई प्रेमसे अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ मैं प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

❑❑

साधनमें श्रद्धाकी आवश्यकता

जितनी श्रद्धा होती है उतनी ही तत्परता होती है और जितनी तत्परता होती है, उतना ही मन और इन्द्रियोंका संयम होता है। कोई मनुष्य रुपयोंके लिये नौकरी करता है, उसे मालूम हो जाय कि इस तरहसे अधिक रुपये मिलेंगे तो वह वैसा ही करेगा। इसी प्रकार भगवद्विषयमें जितनी श्रद्धा होती है, उतनी ही तत्परता होगी। किसीकी गीतामें श्रद्धा है, पर वह उसे पढ़ता, सुनता नहीं और केवल कहता है कि मेरी गीतामें श्रद्धा है। किसी पुरुषमें मेरी श्रद्धा है, पर मैं उसके वचनोंका पालन नहीं करता, इसमें क्या श्रद्धा समझी जा सकती है। जितनी अधिक श्रद्धा होगी, उतनी अधिक तत्परता होगी। भगवान् कहते हैं—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४।३९)

हे अर्जुन! जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है। ज्ञानको प्राप्त होकर, तत्क्षण भगवत्प्राप्तिरूप परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है।

सोचना चाहिये कि मन-इन्द्रियोंके वशमें होनेसे श्रद्धा होती है अथवा श्रद्धासे मन-इन्द्रियादि वशमें होते हैं। इसका उत्तर यह है कि श्रद्धासे मन-इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, नहीं तो भगवान् श्रद्धाको ज्ञानसे नहीं मिलाते। यहाँ कर्ता श्रद्धावान् है, लभते क्रिया है और ज्ञान कर्म है। तीनोंको एक लाइनमें रखा है।

नित्य साधन करते हैं, उसे ही यदि श्रद्धाके साथ, तत्परताके साथ करें तो बहुत शीघ्र कल्याण हो सकता है। एक भाईको बीस

प्रवचन—दिनांक ४-१-१९३७, प्रातःकाल, गीतावाटिका, गोरखपुर।

वर्षके साधनसे जो लाभ नहीं हुआ, वही लाभ छः महीनामें हो सकता है। उसे अधिक लाभ भी हो सकता है।

बहुत-से भाई गीताका अभ्यास करते हैं, पर खयाल नहीं करते कि भगवान् अर्जुनके किस प्रश्नका किस प्रकार समाधान करते हैं। प्रत्येक अध्यायका दूसरे अध्यायसे क्या सम्बन्ध है। एक श्लोकका दूसरे श्लोकसे क्या सम्बन्ध है, इसका विस्तारपूर्वक विचार करना चाहिये। अर्जुनके प्रश्न उठानेका क्या कारण है, फिर भगवान् उसका कैसा उत्तर देते हैं, इसका भी खयाल करना चाहिये। इसमें आपका समय उतना ही लगेगा, जितना अभी लगता है। एकलव्य भीलकी गुरुमें श्रद्धा ही प्रधान थी, गुरुने उसे आकर कभी भी विद्या नहीं सिखलायी।

जाबालाके पुत्रकी गुरुमें श्रद्धा ही प्रधान थी। वह चार सौ गायोंको ले जाकर एक हजार होनेपर वापस लौटे। एकलव्यको तो स्पष्ट उत्तर ही मिल गया था। गुरुने उसे शिष्य बनानेसे मना कर दिया। गुरु-शिष्यके सम्बन्धमें शिष्यकी ही प्रधानता है। कोई चाहे कि मैं सबका गुरु बन जाऊँ तो कैसे बन सकता है। गुरु कोई नहीं बन सकता, पर शिष्य बनना चाहे तो बन सकता है। उसने जंगलमें जाकर गुरुकी मिट्टीकी मूर्ति बनायी और उसीसे पूछ-पूछकर विद्या सीखनी आरम्भ की। जिस प्रकार भरतजी भगवान् रामकी पादुकाओंको राजसिंहासनपर रखकर राजकाज चलाते थे।

ऐसी ही बात जपकी है। हम जप कर रहे हैं, उस जपसे जो लाभ होता है, मैं कह सकता हूँ कि आपने बीस वर्षसे जो लाभ नहीं उठाया, उसे एक दिनमें प्राप्त कर सकते हैं। इसमें अत्युक्ति नहीं है, असम्भव नहीं है, शास्त्रसम्मत है। मनुने बतलाया है कि वाचिक जपसे दस गुणा लाभ उपांशुका और

उपांशुसे दस गुणा मानसिक जपका लाभ है। उसे भी यदि अर्थके साथ यानि उसका ध्यान करते हुए किया जाय तो उसके सारे पाप नष्ट होकर वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार गीताके पाठकी बात है। अर्थकी ओर, लक्ष्यकी ओर ध्यान रखनेसे ज्ञान मिलेगा और नामके अर्थकी ओर ध्यान रखनेसे नारायण मिलेंगे। यदि निष्कामभावसे किया जाय तो विशेष लाभ होता है।

एक नाम लेनेसे ही सब कुछ हो सकता है। पर एक लाख नाम-जपसे क्यों नहीं होता? यदि एक घंटा भी आप जो असावधानीसे करते हैं, उसे सावधानीसे करें तो हजार गुणा फल मिल सकता है। आप शास्त्रद्वारा, विचारद्वारा देख सकते हैं। आप भजनको इतना मूल्यवान् समझते ही नहीं, समझते तो इस प्रकार समय नहीं बीतता। हम जितना पैसेका आदर करते हैं, उतना भी भगवान्‌का नहीं करते। पैसेकी बात तो दूर रही, हम कौड़ियोंका जितना आदर करते हैं उतना भजनका नहीं करते। हमारी कौड़ीमें जितनी प्रीति है उतनी भी भगवन्नाममें नहीं है, इसपर भी हम फल चाहते हैं तो कैसे लाभ मिलेगा। भगवान्‌के एक नाममें इतना लाभ है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हम पारसमणिको मामूली पत्थर समझते हैं। किसी महापुरुषने अपने शिष्यको पारसकी कीमत करानेके लिये भेजा, सागवालीने दो मूली कहा, बनियेने एक रुपया देनेको कहा, सुनारने दस रुपया कहा, दूसरे सुनारने एक लाख कीमत बतलायी, बड़े जौहरीके पास गया उसने कहा हमारे पास इसकी कीमत नहीं है, फिर राजाके पास गया, राजाने जौहरियोंको बुलाकर पूछा, उन्होंने एक करोड़ कीमत बतलायी। शिष्यने कहा बेचना नहीं है। महात्माके पास लौट आया। उसने कहा हमारी

समझसे एक करोड़में बेच देना चाहिये। महात्माजीने कहा इसकी कीमत ही नहीं है, कीमत तो इसमेंसे निकलती है। महात्माने लोहा मँगाकर छुआकर सोना बनाकर बताया और कहा सारे संसारकी कीमत तो इसके पेटमें है। इसी प्रकार भगवन्नामकी कीमत पारस है, पर हम जानते नहीं। गीतामें कहा है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(गीता १७। २३)

ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा है; उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये।

ॐ यह सारे वेदोंका सार है। तीनों वेदोंसे गायत्री निकली, उससे तीन व्याहृतियाँ निकलीं और उन तीन व्याहृतियोंसे ॐ निकला। यही महिमा राम, कृष्ण, गोविन्द, हरि आदि नामोंकी है।

हमें जलकी आवश्यकता है उस समय चाहे पानी, वाटर, अप, जल आदि शब्दोंमेंसे किसी एकका भी उच्चारण करें तो उसका तात्पर्य एक ही है। इसी प्रकार भगवन्नाम सब एक ही है। वह कूंजड़ी उस पारसका मूल्य दो मूली समझती थी, पर हम तो भगवन्नामका मूल्य उतना भी नहीं समझते। भगवन्नाममें कितनी सामर्थ्य है, कितना लाभ है, हम बतला नहीं सकते। एक नामसे उद्धार हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ

शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

शास्त्रोंमें जैसा कहा है वैसा ही लाभ है। यह संक्षेपसे नाम-महिमा बतलायी।

इसी प्रकार सन्ध्याके विषयमें समझ लीजिये। सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वह जाकर सारी दुनियामें बरसता है, उससे सारी दुनियाकी तृप्ति होती है। जो तीन अंजलि सूर्यको देता है, वह सारी दुनियाको सदावर्त जिमाता है, जो प्रेमसे और नियमसे सन्ध्या करता है, उसका एकमात्र सन्ध्यासे कल्याण हो सकता है।

मरनेपर जीव वायुसे प्रार्थना करता है, सूर्यसे प्रार्थना करता है कि अपनी रश्मियोंद्वारा ले जाकर भगवान्‌को मुझे दिखलाइये।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

(ईशावास्योपनिषद् १५)

हे सबका भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वरका श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्रसे ढका हुआ है आपकी भक्तिरूप सत्यधर्मका अनुष्ठान करनेवाले मुझको अपने दर्शन करानेके लिये उस आवरणको आप हटा लीजिये।

इसपर भगवान् सूर्यको ध्यान देना पड़ता है कि उसे भगवान्‌से मिलावें। कोई कहे चन्द्रमाको क्यों नहीं अर्घ्य दें, उससे मुक्ति मिल सकती है या नहीं। इसका उत्तर यह है कि इससे स्वर्ग तो मिलता है, पर मुक्ति नहीं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥

(गीता ८। २५)

जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है, रात्रि-अभिमानी देवता है

तथा कृष्णपक्षका अभिमानी देवता है और दक्षिणायनके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गया हुआ सकाम कर्म करनेवाला योगी उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले गया हुआ चन्द्रमाकी ज्योतिको प्राप्त होकर स्वर्गमें अपने शुभकर्मोंका फल भोगकर वापस आता है।

सन्ध्याका इस प्रकार नियम कर ले कि जिस दिन समयपर सन्ध्या न हो, उस दिन उपवास-भोजन न करे। नियम यह करे कि प्रातःकालकी सन्ध्या सूर्योदयके पहले और सायंकालकी सूर्यास्तके पहले हो जाय।

जिस प्रकार कोई महात्माके पधारनेपर हम उनका स्वागत करनेके लिये पहलेसे तैयार रहते हैं, उसी प्रकार सूर्यभगवान् तो महात्माके भी महात्मा हैं, वे सब प्राणियोंका कल्याण करते हैं। इसी प्रकार उन्हें प्रकट होते समय जलांजलि दे और उन्हें देखकर मुग्ध होवे। सूर्यको भगवान् मानकर दर्शन करनेसे भगवान्‌के दर्शनका फल मिलेगा। इसी प्रकार प्राणायामकी बात है—हमें उसमें प्रेम-श्रद्धा है और विधिपूर्वक करते हैं तो यथार्थ लाभ हो सकता है। यदि बेगार मानकर बेमनसे करते हैं तो उतना लाभ नहीं होता, पर नहीं करनेसे तो ठीक है और करते-करते कभी लाभ हो सकता है।

जितना काम हम कर रहे हैं उसका लाभ इसीलिये नहीं हो रहा है कि हममें उसके प्रति आदर, श्रद्धा और प्रेम नहीं है। मुक्ति तो एक हरे राम मंत्रसे ही हो सकती है। इसी प्रकार सन्ध्यासे मुक्ति हो सकती है। अभी हम जो सन्ध्या, नाम-जप आदि करते हैं, वह ठीक है। उसमें कोई नयी बात नहीं करनी है। केवल उसमें श्रद्धाका समावेश कर दें। चाहे किसीका भी

ध्यान करें, गणेश, विष्णु, कृष्ण, राम, शंकर आदि किसीका भी ध्यान करें, उत्तम बात है।

आप जितना समय लगाते हैं, वह समय व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। जीवनको अमूल्य समझकर बर्बाद नहीं करना चाहिये। समय बेकार जा रहा है, इसीलिये लाभ नहीं होता। श्रद्धाकी आवश्यकता है, जितनी श्रद्धा होगी, उतना ही लाभ होगा।

आप श्रद्धाकी रक्षा करेंगे तो श्रद्धासे सबकी रक्षा होगी। जैसे कौरवोंमें भीष्मकी रक्षा करनेसे सबकी रक्षा हो सकती थी, यहाँपर श्रद्धा ही भीष्म है।

❑ ❑

कर्मयोग तथा भक्तियोग

आज कर्मयोग और भक्तियोगके विषयमें कुछ कहनेका विचार है। ये दोनों उत्तम होते हुए भी भक्तियोगप्रधान हैं, भक्तियोगकी ही महिमा भगवान्ने गायी है, पर खयाल करना चाहिये कि भक्तियोगमें कर्म गौणरूपमें और कर्मयोगमें भक्तियोग गौणरूपसे मौजूद है। दोनोंका फल एक ही है, फिर भी भक्तिकी श्रेष्ठता है।

जैसे ज्ञानयोग और भक्तियोगमें भक्तियोगको विशेष बताया गया है। इसी प्रकार कर्मयोग और भक्तियोगका समान फल होनेपर भी एक विशेषता है। जैसे एक पिताके चार पुत्र हैं, सभीको सम्पत्ति बराबर-बराबर मिलेगी, फिर भी जो पिताकी अधिक सेवा करता है, उसपर पिताका अधिक प्रेम होता है, यह विशेषता है। इसी प्रकार कर्मयोगी और भक्तियोगी दोनों ही मुक्तिको प्राप्त करेंगे, पर भक्त प्रभुको विशेष प्यारा है। जैसे पिताका सेवक और प्रेमी पुत्र पिताकी गुप्त बातोंको, रहस्यको अधिक बतला सकता है। इसी तरह भक्त भी प्रभुके प्रेम, रहस्य, मर्मकी बातोंको अधिक बतला सकता है। पिताका सम्पत्तिके अतिरिक्त प्रेमका स्वतन्त्र अधिकार होता है, वह अपने प्रिय पुत्रको ही बताता है। इसी प्रकार प्रेमी भक्तको परम पिता परमेश्वर अपना स्वतन्त्र अधिकार, संसारके उद्धारका अधिकार दे देते हैं। यह उसमें विशेषता है। इसीलिये भगवान्ने कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

(गीता ६।४६)

प्रवचन—दिनांक ७-१-१९३७, गोरखपुर।

योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; इससे हे अर्जुन! तू योगी हो। आगे कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६।४७)

सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

भक्तियोगका क्या अभिप्राय है। भज धातुसे भक्ति बनती है। भजका अर्थ है सेवा करना, सेवाका अभिप्राय है प्रभुके अनुकूल हो जाना। दूसरा अर्थ यह है कि ईश्वरमें परम अनुराग, परम प्रेमका नाम ही भक्ति है।

ईश्वरकी सेवा और प्रेम दोनोंको लेना चाहिये। प्रभुका प्रेम और उनकी आज्ञापालन—इसका नाम भक्ति है। सकामभावसे कर्मोंका करना कर्मयोग नहीं है। निष्कामभावसे कर्मोंका करना कर्मयोग है।

भक्तिमार्गमें कर्मोंका त्याग नहीं है। विशेष प्रेममें आज्ञापालन न हो वह बात दूसरी है, पर वह जान-बूझकर आज्ञाका उल्लंघन नहीं करता। जब उसे प्रेमातिरेकके कारण तन-मनका ज्ञान ही नहीं रहता, उस अवस्थामें उसने कर्मोंका त्याग नहीं किया, कर्म स्वयं छूट जाते हैं। ऐसी दशामें प्रभु अधिक प्रसन्न होते हैं। इसे देखकर कोई इसकी नकल करने लगे, यह ठीक नहीं है।

एक समयकी बात है श्रीकृष्ण विदुरजीके यहाँ गये, उस समय विदुरजी घरपर नहीं थे, उनकी पत्नी थीं। उन्हें इतना आनन्द आया कि शरीरकी सुधि नहीं रही। प्रभुको केले खिलाते

समय छिलका खिलाने लगी और गूदा फेंकने लगी। इतनेमें विदुरजी आ गये और कहा क्या कर रही है। उसे होश हुआ और कहा कि मैंने बड़ा अपराध किया। बादमें केलेके अन्दरका गूदा खिलाया। नारायणने कहा इसमें वह आनन्द नहीं आया, जितना छिलकोंमें आया था। छिलकोंमें आनन्द आया था यह बात नहीं थी, वह तो प्रेमकी परिस्थितिका ही स्वाद था। नकल करनेमें तो अवहेलना हो जाती है। भक्तिमें कर्मोंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। भक्तिमें प्रेम ही प्रधान है। जितना अधिक प्रेम होगा, उतनी ही जल्दी प्राप्ति होती है। प्रेम सारे कर्मोंका और सारे भावोंका फल है।

यहाँ विचार करना है कि अनन्य प्रेम निष्काम ही होता है। सकाम प्रेम अनन्य नहीं होता। किसी अन्यमें प्रेम नहीं हो वही अनन्य है। किसी और चीजकी कामना है तो अनन्य कहाँ हुआ। जैसे धन आदिकी कामनाको लेकर प्रभुमें जो प्रेम है वह तो वास्तवमें धन आदिमें ही प्रेम है, प्रभुमें नहीं। उसका मुख्य उद्देश्य तो धन ही है।

उद्देश्य दूसरी वस्तुका न हो, पर आपत्ति पड़नेपर प्रभुको आपत्ति-निवारणार्थ स्मरण करे—यह दूसरी बात है। इसे मुख्य प्रेम कहा जा सकता है। पर अनन्य प्रेम नहीं, जैसे द्रौपदी, गजेन्द्र आदि।

अनन्यप्रेममें कामनाकी जरा भी गुंजाइश नहीं है। द्रौपदी एवं गजेन्द्रका प्रेम अनन्य नहीं है। अनन्य प्रेम तो प्रह्लादका है, जो भारी-से-भारी आपत्ति पड़नेपर भी प्रभुसे कुछ भी नहीं कहते।

प्रभु तो एक प्रेमका नाता ही जानते हैं। तभी तो वे कहते हैं—

जानहुँ एक भगति कर नाता।

प्रह्लाद ज्ञानी, निष्काम और अनन्य प्रेमी हैं। हिरण्यकशिपुने लोभ भी दिखाया, डर भी दिखाया, पर उन्होंने भजनको नहीं छोड़ा—इसीको अनन्य प्रेम कहते हैं। भगवान् उनसे कहते हैं बेटा प्रह्लाद मैं तुम्हारा अपराधी हूँ, मुझे यहाँ तुम्हारे पास पहुँचनेमें अति विलम्ब हो गया, इस अपराधके लिये मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ।

प्रह्लादका तो विशुद्ध प्रेम था, इसलिये भगवान्‌ने ऐसा कहा, पर जो धनके लिये भगवान्‌को बुलाते हैं, वहाँ भगवान् ऐसा नहीं कहते। अर्थार्थी और आर्त भक्तका अन्तर देखिये—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(गीता ७। १६)

चार प्रकारके सुकृतिजन मुझे भजते हैं, उनमें भी ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्यारा है। जिस प्रेमकी सीमा नहीं रहती, उसे अत्यन्त कहते हैं और मैं ज्ञानीको अत्यन्त प्रिय हूँ। ज्ञानी किसे कहते हैं यह समझना चाहिये। जो परमात्माको प्राप्त हो चुका है, वह तो ज्ञानी है ही, पर भगवान्‌से मिलनेसे पूर्व जो निष्काम भक्त है, वह भी ज्ञानी है। जैसे प्रह्लाद भगवद्दर्शनसे पूर्व भी निष्काम ज्ञानी भक्त थे। उन्हें जिज्ञासु भक्त नहीं मान सकते, क्योंकि उसके कोई जिज्ञासा नहीं थी। यहाँ ज्ञानी शब्द इस बातको बतला रहा है कि ज्ञानीसे पहलेके तीनों भक्त ज्ञानी नहीं थे। ज्ञानी होते तो भगवत्तत्त्वके ज्ञाता होते और भगवान्‌के तत्त्वका ज्ञानी होनेसे दुःख-निवारणकी प्रार्थना नहीं करते।

अर्थार्थी—जो सांसारिक पदार्थोंके लिये, अर्थके लिये भजे।

आर्त—जो दुःख-निवृत्तिके लिये प्रार्थना करे।

जिज्ञासु—वह बड़े-से-बड़ा दुःख या संकट आनेपर भी

यहाँतक कि मर जानेपर भी प्रभुसे कोई वस्तु नहीं माँगता। वह तो केवल प्रभुको जानना चाहता है।

ज्ञानी—उसे तो मुक्तिसे भी कोई प्रयोजन नहीं है, वह तो अपना कर्तव्य करता रहता है।

कोई अर्थार्थीका अर्थ इस प्रकार कहते हैं कि प्रभुके दर्शनरूपी अर्थका अर्थी है, अर्थात् प्रभुके दर्शनोंको चाहता है। स्त्री, पुत्र, धनादिके लिये भगवान्‌को जो भजता है उसे भगवान् यह नहीं कह सकते कि यह हमारा भक्त नहीं है। वे तो बड़े दयासागर हैं। जरासेमें भी भक्त समझने लगते हैं।

जैसे ध्रुवका उद्देश्य था राज्यप्राप्ति, उसने राज्यके लिये ईश्वरकी भक्ति की। इसलिये उसे भगवान् भी मिल गये और राज्य भी मिल गया। भगवान् कहते हैं—कोई मुझे किसी भी प्रकार भजे, वह मुझे ही प्राप्त होता है। उसे भगवान् उदार कहते हैं। कोई कहे यह कैसे? उत्तर दिया जाता है—संसारके भोगोंकी सिद्धि प्रभुसे होती है, यह समझकर भक्ति करता है। इसी विश्वासपर ध्रुवने भी प्राणोंकी परवाह छोड़कर भक्ति की। प्रभु कहते हैं जिसे मेरे अस्तित्वमें, मेरे होनेपनमें ही विश्वास हो, उसे भगवान् भक्त कहते हैं। वह आस्तिक है। आगे चलकर भगवान्‌की भक्तिमें वृद्धि हो जाती है।

❑❑

मनुष्यका कर्तव्य

श्रीतुलसीदासजीके वचन हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

भगवान्‌ने हमें मनुष्य बनाया यह विशेष कृपा की है। इसपर भी कल्याण नहीं होता, इसमें मनुष्यकी मूढ़ता है। गंगा-स्नानसे कल्याण हुआ, इसमें गंगाकी कृपा ही माननी चाहिये, अन्यथा नदियाँ तो और भी बहुत-सी हैं, पर हमें गंगातक तो जाना ही पड़ेगा।

इसमें प्रश्न होता है कि पुरुषार्थ तो हमारा ही हुआ? कहा जा सकता है कि गंगाने कृपा की जो धरतीपर आयीं। नहीं आतीं तो क्या हम गंगासे लाभ ले पाते, इसलिये सिद्ध हुआ कि पुरुषार्थमें भी गंगा ही हेतु है।

सूर्य=ईश्वर, प्रकाश=दया, नेत्र=बुद्धि है। बुद्धिसे देखेंगे तो पता चलेगा कि पद-पदपर ईश्वरकी दया है। हमें सभी पदार्थ ईश्वरकी दयासे मिलते हैं।

मनके विपरीतमें क्रोध आता है अनुकूलमें नहीं। इसे ऐसा समझे कि जो कुछ विपरीत होता है उसे भगवान् ही कर रहे हैं। ऐसे मौकेपर हम क्रोध नहीं करेंगे, परीक्षामें पास हो जायँगे तो आगे चलकर भगवान् मिलेंगे ही।

केवल अहंकार न आये इसीलिये ईश्वरकी दयाको माने, यह तो गौण बात है, पर वास्तवमें पुरुषार्थमें भी ईश्वरकी दया ही है।

प्रश्न—जिसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, उसके नास्तिकोंका संग हो और भगवान् नहीं हैं, नहीं हैं—ऐसा सुनता रहे तो उसकी भी यह धारणा हो सकती है क्या कि भगवान् नहीं हैं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि मैं किसीको जानता हूँ, उसके कुटुम्बको देख चुका हूँ, फिर कोई कहे कि वह नहीं है तो क्या उसको मैं मान सकता हूँ।

आत्माके प्रत्यक्ष जो है, उसमें कभी सन्देह नहीं हो सकता। इदम्‌का तो अभाव हो जाता है, किन्तु अहम्‌का अभाव कभी नहीं होता। जाग जानेपर स्वप्नके संसारमें कभी हम जा सकते हैं क्या? प्राप्तिके बाद नास्तिकोंके संगसे परमात्मा नहीं हैं, ऐसी धारणा कभी नहीं हो सकती। परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद अप्राप्ति हो ही नहीं सकती। इसमें शंका बन ही नहीं सकती।

मनुष्यका क्या कर्तव्य है? यदि शास्त्रको माने तो गीतामें लिखा हुआ माने, महात्मापर विश्वास हो तो वह कहे वैसे करे, यदि बुद्धिपर विश्वास हो तो उसका आसरा ले।

प्रत्यक्षपर तो विश्वास करना ही होगा। वृक्षोंका क्या उपयोग हो सकता है। फल खानेके काम आता है। छाया बैठनेके काममें आती है, देखते हो तो क्या विचारते हो, घोड़ा चढ़नेके काम आ जाता है, कुत्ता तो चढ़नेके लायक भी नहीं है, गायसे दूध मिलता है। सबके लिये सोचा, किन्तु अपने विषयमें नहीं सोचा-विचारा कि हमारा शरीर किस कामके योग्य है। दुनियामें जितने जीव हैं, सबसे श्रेष्ठ जो तुम देखते हो उनमें देवता-पितरोंको छोड़ दो, क्योंकि वे दीखते नहीं। दीखनेवालोंमें कौन श्रेष्ठ है? गदहा है? नहीं। सूअर है? नहीं। गाय है? ठीक-ठीक है। सबसे उत्तम क्या है? मनुष्य। मनुष्यसे भी उत्तम कोई लगता है?

देवता, पितरोंके बारेमें सुना है, किन्तु उन्हें कभी देखा नहीं। मनुष्य, पशु, पक्षी तो देखनेमें आते हैं। उनमें श्रेष्ठ मनुष्य लगता है।

इन सबका प्रबन्ध कौन कर सकता है? पशु-पक्षी नहीं कर

सकते, मनुष्य कर सकता है, अतः यह तुम्हारा कर्तव्य हुआ, यदि तुम इन्हें सुख नहीं पहुँचाते हो तो भविष्यमें यदि तुम पशु-पक्षी होओगे तब तुम्हें कौन सुख पहुँचायेगा।

खाद्यपर विचार करो। पशु-पक्षी खाद्य नहीं हैं। गरीबपर कोई अत्याचार करे तो क्या करे बेचारा। तुम्हारे दाँत, नाखून आदिसे यही पता लगता है कि तुम्हारा आहार मांस नहीं है। बन्दरके-से दाँत हैं। बन्दर कभी मांस नहीं खाता, फल, अन्न खाता है, यही तुम्हारा खाद्य है। मनुष्यतासे अपनेको सँभालोगे तो तुम्हें अपने-आप अपना कर्तव्य समझमें आ जायगा। महात्मा, शास्त्रकी बात मानो तो शीघ्र ही समझमें आ जायगा। तुमसे कोई-न-कोई तो श्रेष्ठ है ही। उनकी बात मानोगे तो शीघ्र काम बन जायगा। अपनी बुद्धिपर निर्भर होनेसे कभी धोखा भी हो जाता है।

❑ ❑

उदारता ही सार है

आज हमारे भाइयोंकी क्या दशा हो रही है, हृदय फटता है, जवाब नहीं दिया जाता है। आज एक भाई कमाता है और उसके तीन लड़कियाँ हैं वह उनका विवाह कैसे करे, क्या करे।

जिनके न कोई व्यापार है, न दलाली है और घरमें चार लड़कियाँ हैं, वे कैसे करें। गरीबोंकी दशा भयंकर है। आज एक बाड़ीमें बीस घर हैं और एक घरमें रसोई नहीं बनी, पर हमें क्या फिकर है, कोई मरे। ऐसी अवस्थामें हमें धिक्कार है। राजा रन्तिदेव अड़तालीस दिन सपरिवार भूखे रहे। अड़तालीस दिन बाद कुछ अन्न-जल मिला; किन्तु अतिथियोंके आनेपर उन्हें दे दिया।

आज हमारे भाई भूखे हैं और हम माल उड़ाते हैं। मैं तो कहता हूँ कि धूल है, ऐसी मौजको धिक्कार है। दस दिन मौज कर लो, बादमें हिसाब देना होगा।

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आय॥
हाड जले ज्यों लाकड़ी केश जले ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर भया कबीर उदास॥

इस तरफ खयाल कर हमलोगोंको जो कुछ करना है, वह जल्दी कर लेना चाहिये। इस समय गंगा बह रही है, बस हाथ धो लें। जिसके पास धन है, वह धनसे और जिसके पास तन है, वह तन देवे। इसके लिये मैंने कायस्थकी एक कहानी बतायी थी, उस उदाहरणपर ध्यान देना चाहिये।*

---

* यह कथा विस्तारसे गीताप्रेससे प्रकाशित 'हमारा आश्चर्य' नामक पुस्तकमें देखें।

संसारमें ऐसा कुछ नहीं है जो मनुष्य नहीं कर सके। कायस्थका उदाहरण देनेका तात्पर्य यही है कि यह मनुष्यकी पदवी थोड़े दिनकी है। इसमें जो कुछ उदारता कर ले, वही अपनी है। यह पदवी रहनेकी नहीं है। जबतक जीवन है, तबतक दूसरोंका उपकार कर लें। भगवान् रामने कहा है—

परहित बस जिन्ह कें मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

आपके हाथ जो लग जाय वह दूसरोंकी सेवामें लगा दो। घरवाले अलबत्ता 'पागल' कहेंगे, उन्हें कहने दो। पागल तो वे हैं जो धन इकट्ठा करते हैं। बुद्धिमान् तो वही है जो धनको साथ ले जानेका उपाय कर ले। यह दशा सबकी होगी। समय पूरा हो जानेपर यमराजके दूत ले जायँगे, मार पड़ेगी। इस राज्यके नोट वहाँ नहीं जाते। क्या जायगा? शरीर तो जायगा नहीं, प्राण जायँगे।

'दया' ही नोट है। वाणीके द्वारा, मनके द्वारा, धनके द्वारा, तनके द्वारा, जैसे भी हो, दूसरोंके हितमें लगा दो। घरवाले मना करें तो उन्हें मालूम न होने दो। जैसे स्त्रीके हाथमें जो कुछ लगता है वह बेटीके यहाँ भेज देती है। वैसे ही यह विद्या उससे सीखनी चाहिये। शरीरके द्वारा कोशिश करके दूसरोंका उपकार, भगवद्भक्ति आदि करने चाहिये।

क्षमा, शान्ति और तेजकी वृद्धि करनी चाहिये। सब कुछ खर्च कर दें, फिर देखें। आपको कितना आनन्द मिलेगा। सबको नारायण समझकर सबकी सेवा करें, फिर मानो आनन्द और शान्तिकी लूट हो रही है। संसार परमात्माका स्वरूप है—लीला हो रही है, हम भी उनके साथ खेलने आये हैं। प्रभु नानारूप धरकर खेल दिखा रहे हैं। यह एक ही अनेक रूप धरकर अनेक लीला कर रहे हैं। हम भी उनके साथमें होकर शामिल हो जायँ।

जैसे ग्वालबाल साथ रहते, जब कोई आपत्ति आती तब भगवान्‌के पास आ जाते।

अपने भी लीला मानकर देखो कि कितना आनन्द आता है। अपने तो प्रत्यक्षमें लूट हो रही है। 'भजन' भी लूट है।

राम नामकी लूट है लूट सकै तो लूट।
अन्तकाल पछतायगा जब प्राण जायँगे छूट॥
आज कहे मैं काल भजूँ काल कहै फिर काल।
आज कालके करत ही अवसर जासी चाल॥

यह दशा होनेवाली है। भगवान्‌ने हमें जीभ दी है, फिर दरिद्रता क्यों? खूब मीठा बोलना चाहिये। हाथ दिये हैं अच्छे काम करो। कान दिये हैं अच्छे-अच्छे शब्द भरो। नेत्र दिये हैं, अच्छे-अच्छे चित्र देखो, इससे अन्तमें नारायणका ही ध्यान होगा। साँप आदिके चित्र देखोगे तो साँप आदिका ही भाव रहेगा।

पद-पदमें, जर्रे-जर्रेमें ध्यान होना चाहिये। भगवान् कहते हैं सारे भूतोंमें मैं हूँ, जो उन सबको भजता है, वह मुझे ही भजता है।

हर समय आनन्दमें ही परिपूर्ण रहना चाहिये। आनन्दमें ही चलना-फिरना चाहिये। चलते समय समझे मानो महान् आनन्दमें विचर रहे हैं फिर चिन्ताकी क्या मजाल है कि माया फैला दे। माया पास भी नहीं आ सकती। हमलोगोंको ऐसा अभ्यास डालना चाहिये। इसमें खर्चका कुछ काम भी नहीं है।

मनुष्यका जन्म पाकर अगर यह गाँठ न खुली तो फिर कभी न खुलेगी, इसलिये हमलोगोंको कोशिश करनी चाहिये। पद-पदमें भगवान् हैं, ऐसा विश्वास हमें करना चाहिये। और करना ही क्या है?

❑❑

सर्वस्व देकर भी भगवत्प्रेम प्राप्त करें

एक बात बहुत महत्त्वकी है। भगवान्‌की शरण ले लेनेसे फिर अपनेमें दुर्गुण-दुराचार आ ही नहीं सकते। जैसे सूर्यकी शरण ले लेनेसे अन्धकार और शीत पास आ ही नहीं सकते, इसी प्रकार भगवान् जिनके हृदयमें विराजमान हैं, वहाँ दुर्गुण-दुराचार आ ही नहीं सकते, सद्‌गुण-सदाचार आते हैं। सूर्यके आश्रयमें गर्मी और प्रकाश स्वाभाविक आते हैं—ऐसे ही भगवान्‌की शरण लेनेपर बिना प्रयास स्वाभाविक ही सद्‌गुण-सदाचार आ जाते हैं, दुराचार-दुर्गुण आ ही नहीं सकते। ऐसा भाव, दृढ़ निश्चय परमात्माके आश्रयसे ही आते हैं। यदि दुराचार-दुर्गुणके भाव आवें तो हे नाथ! हे नाथ! पुकारनेके साथ ही चले जायँगे। शरणागतिकी कमीके कारण, भूल या मान्यताके कारण ऐसा प्रतीत होने लगे कि दुर्गुण-दुराचारके भाव आ रहे हैं तो हे नाथ! हे नाथ! पुकारना चाहिये। भगवान्‌की शरण हो जानेपर चिन्ता, भय, शोक, दुर्गुण, दुराचारका मूलसहित नाश हो जाता है। सद्‌गुण, सदाचार, शान्ति और आनन्द स्वभावसिद्ध हो जाते हैं।

भगवान्‌की शरण लेनेपर ये सब हो जायँ इसमें तो कहना ही क्या है, भगवान्‌के प्रेमियोंके संगसे ही ये हो जाते हैं। **भगवत्संगि-संगिनाम्** उनकी शरणसे, प्रेमसे, उनकी दयासे यह सब हो सकता है। भगवान्‌की दयाके तत्त्वको जो समझ जाता है, उसमें दया, गम्भीरता, शान्ति, सरलता अपने-आप आ जाते हैं। आनन्द, शान्ति समाती नहीं। हमलोग लायक होंगे तो प्रभु

स्वतः ही प्रकट हो जायँगे। जब खूब प्रेम होता है, तब कहींसे भी कीर्तनकी ध्वनि आती है तो हृदयमें प्रेमकी जागृति हो जाती है। जैसे कामिनीकी झंकारसे कामीके हृदयमें कामकी जागृति हो जाती है।

साधु-महात्माके दर्शनसे नेत्र खिल जाते हैं, जैसे गुलाबका पुष्प। नेत्र चूने लग जाते हैं, यह नेत्रोंका झूमना है। हमलोग तो प्रेमके नामपर यत्किंचित् चेष्टा करते हैं, परन्तु वास्तवमें असली प्रेम तो अलौकिक है। प्रेम अनिर्वचनीय कहा गया है। वहाँ वाणीकी, मनकी पहुँच नहीं है, बुद्धि और मन उसको छू सकते हैं, पर उसका पता नहीं लगा सकते।

जो प्रेमसे घायल हो जाता है, उसकी कोई औषधि नहीं। भगवत्-प्रेमसे घायल हो जाना चाहिये। स्वप्नमें भी भगवान् मिल जायँ तो उसके आनन्दकी क्या सीमा है।

एक बड़ी गोपनीय बात

स्वप्नमें भगवान्के मिलनेपर और जाग्रत्में भगवान्के मिलनेमें जो आनन्द होता है उन दोनोंमें बहुत अन्तर होता है। वर्तमानमें स्त्रीका दर्शन, भाषण होता है, उसीके अनुसार स्वप्नमें होता है, पर भगवान् अबतक प्रत्यक्ष तो मिले नहीं। स्वप्नमें जो भावनासे भगवान् दीखते हैं, जाग्रत्में वास्तवमें मिलनेपर वे बहुत ही विलक्षण दीखते हैं। जिस पदार्थका हमने अनुभव नहीं किया है, उसके स्वप्नसे वह असली वस्तु विलक्षण होती है।

हमलोगोंको प्रेम करना सीखना चाहिये। एक-दूसरेसे उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ाना चाहिये। इतना प्रेम बढ़ाना चाहिये कि बाध्य होकर प्रभुको आना पड़े। भगवान्के निमित्तसे हमलोग जो प्रेम बढ़ावेंगे, उसका फल भगवान् देंगे। भगवान् प्रेमीका त्याग नहीं

कर सकते। उन्हें प्रेमियोंकी बड़ी आवश्यकता है, प्रेमी बहुत कम मिलते हैं, मिलते ही नहीं। सर्वस्व देनेपर यदि एक रत्ती प्रेम मिले तो सर्वस्व दे डालना चाहिये, वही सच्चा पुरुष है।

रत्नका वास्तविक मूल्य जौहरी ही जानता है। लाख रुपयोंके हीरे-माणिकका भीलनी चार पैसा नहीं देती, क्योंकि वह सोचती है कि ये काँचके टुकड़े क्या काम आयेंगे।

एक रत्ती भगवत्प्रेमके लिये जौहरीलोग सर्वस्व दे डालते हैं। जो जितना कम मूल्य देना चाहता है, वह उतना ही भगवान्‌के प्रेमके तत्त्वको नहीं जानता।

जिस क्रियाके करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो, वही क्रिया वह करता है। स्वार्थके त्यागसे प्रेम मिलता है। भगवत्प्रेमीके अनुकूल बननेमें ही उसे आनन्द होता है।

❑ ❑

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?
1631	भगवान् कैसे मिलें ?
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं
1666	कल्याण कैसे हो ?
527	प्रेमयोगका तत्त्व
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा
528	ज्ञानयोगका तत्त्व
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय
298	भगवान्के स्वभावका रहस्य
243	परम साधन—भाग-१
244	,, ,, भाग-२
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति
579	अमूल्य समयका सदुपयोग
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)
247	,, ,, (भाग-२)
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति
1296	कर्णवासका सत्संग
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
249	शीघ्र कल्याणके सोपान
250	ईश्वर और संसार
519	अमूल्य शिक्षा
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
258	तत्त्वचिन्तामणि
257	परमानन्दकी खेती
260	समता अमृत और विषमता विष
259	भक्ति-भक्त-भगवान्
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
1530	आनन्द कैसे मिले ?
769	साधन नवनीत

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?
1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो ?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता

कोड	पुस्तक
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?
307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य
1944	परम सेवा